

दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

रि.या.(सि.)सं.6563/2011

सुरक्षित : 12 अगस्त, 2013

निर्णय तिथि : 23 सितम्बर, 2013

अवतार सिंह

..... याचिकाकर्ता

द्वारा: श्री डी. जे. सिंह अधिवक्ता

बनाम

भारत संघ और अन्य

....प्रत्यर्थागण

द्वारा: सुश्री ज्योति सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता
श्री हिमांशु बजाज, केंद्र सरकार का
स्थायी अधिवक्ता, प्रत्यर्थी -1 और 3
के लिए अधिवक्ता और लेफ्टिनेंट
कमांडर वरुण सिंह (नौसेना) के साथ
सुश्री टीना सिंह,

कोरम:

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री गीता मित्तल

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री दीपा शर्मा

न्या. गीता मित्तल

1. वर्तमान रिट याचिका, याचिकाकर्ता द्वारा निम्नलिखित आरोप लगाते हुए दायर की गई है:-

(i) नौसेना (अनुशासन और विविध प्रावधान) विनियमन, 1965 के विनियमन 169 के संदर्भ में पारित 1 नवंबर, 1990 का आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता के लिए सैन्य न्यायालय द्वारा कार्यवाही किया गया था, जिसमें कमांडर बी. के. अहलूवालिया, विचारण जज एडवोकेट द्वारा 2 नवंबर, 1990 को सत्ताईस आरोपों पर सूचित किया गया था।

(ii) 15 मार्च 1991 को जारी किये सैन्य न्यायालय के आदेश में याचिकाकर्ता को 8 आरोपों अर्थात चौथी, 6वीं, 7वीं, 20 वीं (रु. 13, 852/- मात्र) 23वां 25वां 26वां और 27वां आरोप (उन 27 आरोपों में से जिनके लिए उन पर विचारण किया गया था) में दोषी पाया गया साथ-साथ उसी तिथि का आदेश जिसमें 24 महीने के कठोर कारावास, सेवा से बर्खास्तगी और 10,000/- के जुर्माने या उन पर लगाए गए जुर्माने के भुगतान में चूक के लिए छह महीने के कारावास की सजा दी गई थी।

(iii) नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 163 के अंतर्गत नौसेनाध्यक्ष एडमिरल एल.आर. रामदास द्वारा 27 अगस्त, 1991 को पारित आदेश में आरोप 20 को छोड़कर सभी आरोपों में याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया तथा अन्य दण्डों को बरकरार रखते हुए कारावास

की सजा को घटाकर पहले से काटे गए कारावास की अवधि तक सीमित कर दी गई।

(iv) सशस्त्र बल अधिकरण द्वारा 8 दिसंबर, 2010 को पारित आदेश स्थानांतरित आवेदन सं.(टी.ए.सं.)23/2009

(v) और सशस्त्र बल अधिकरण द्वारा दिनांक 23 दिसंबर, 2010 को वि.आ. संख्या 448/2010 द्वारा पारित आदेश

2. रिट याचिकाकर्ता भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 (1) (छ) और 21 के तहत अपने मूल अधिकारों के साथ-साथ नौसेना अधिनियम, 1957 और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के तहत अपने वैधानिक अधिकारों के उल्लंघन की शिकायत करता है।

तथ्यात्मक कथन

3. याचिकाकर्ता को 1 जुलाई, 1970 को उप-लेफ्टिनेंट के रूप में भारतीय नौसेना में नियुक्त किया गया था। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि याचिकाकर्ता को उनकी अवधि का सर्वश्रेष्ठ मिड-शिपमैन होने के लिए 'स्वॉर्ड ऑफ ऑनर' से सम्मानित किया गया था। उन्होंने नौसेना में अपने कार्यकाल के दौरान तट पर और समुद्र में कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं, जिसमें उन्होंने "क्लीयरेंस डाइविंग" में विशेषज्ञता हासिल की है। 1977-78 के बीच, उन्हें यू.एस.एस.आर. में एक विशेषज्ञ पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए प्रतिनियुक्त किया गया था। वह प्रतिष्ठित रक्षा सेवा स्टाफ कॉलेज, वेलिंगटन के पूर्व छात्र हैं। जहां तक

परिचालन गतिविधियों का सवाल है, जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया है, याचिकाकर्ता ने पश्चिमी मोर्चे पर 1971 के भारत-पाक युद्ध में भाग लिया था; 1985 में, उन्हें दुर्भाग्यपूर्ण जंबो "कनिष्क" के ब्लैक बॉक्स को पुनः प्राप्त करने के लिए आयरलैंड में प्रतिनियुक्त किया गया था, जिसे उन्होंने सफलतापूर्वक प्राप्त किया; 1989 में, याचिकाकर्ता ने श्रीलंका में भारतीय शांति सेना (आई.पी.के.एफ. ऑपरेशन) अभियान में भाग लिया, जिसके लिए उन्हें 1990 में गणतंत्र दिवस पर भारत के राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किया गया और कर्तव्य के प्रति समर्पण के लिए "मेशन-इन-डिस्पैचेज" द्वारा सम्मानित किया गया।

4. मुख्यालय पूर्वी नौसेना कमान, विशाखापत्तनम में कमान गोताखोर अधिकारी की नियुक्ति उनके द्वारा किया गया अंतिम कार्य था। याचिकाकर्ता का, 1988 तक भारतीय नौसेना के साथ 20 से अधिक वर्षों की समर्पित सेवा का बेदाग रिकॉर्ड था। याचिकाकर्ता प्रस्तुत करता है कि उसका एक शानदार कैरियर था और वह एक प्रतिबद्ध सैनिक था जब तक कि उसे विचाराधीन मामले में गलत तरीके से फंसाया नहीं गया। तथ्यों का यह वर्णन हमारे समक्ष दायर किए गए जवाबी हलफनामे में विवादित नहीं है।

5. जहां तक याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले का संबंध है, अगस्त 1988 में आई.एन.एस.मगर, जो विशाखापत्तनम में स्थित एक जहाज था, उसके कमांडिंग ऑफिसर के रूप में उनकी नियुक्ति का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है कि कमांडिंग ऑफिसर के रूप में अपने कार्यकाल

के दौरान, जहाज अपने परिचालन के स्तर पर बहुत सक्रिय रहा और भारतीय नौसेना की राष्ट्रपति की समीक्षा; श्रीलंका में भारतीय शांति सेना अभियान के साथ-साथ अन्य कार्यों सहित राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों में भाग लिया।

6. याचिकाकर्ता का कहना है कि आई. एन. एस. मगर अपनी श्रेणी का पहला जहाज था और इसे एक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड (इसके बाद 'जी. आर. एस. ई.') द्वारा बनाया गया था। 1987 में जहाज के 'रिफिट' के रूप में कुछ मरम्मत और संशोधनों की आवश्यकता थी जो जहाज में किए गए थे।

7. याचिकाकर्ता के खिलाफ यह मामला 1989 में अधिकारियों द्वारा एक अनाम पत्र की प्राप्ति के बाद शुरू हुआ।

इस अनाम पत्र में लगाए गए आरोपों के संबंध में, वाइस एडमिरल एल. रामदास(तत्कालीन फ्लैग ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ, पूर्वी नौसेना कमान) द्वारा एक 'जांच बोर्ड' की स्थापना की गई थी।

8. जांच बोर्ड की रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद, वाइस एडमिरल एल. रामदास ने विनियमन 148 के तहत एक जांच अधिकारी नियुक्त किया, जिसने मामले में साक्ष्य का सारांश दर्ज किया। हमें सूचित किया जाता है कि याचिकाकर्ता इससे जुड़ा नहीं था।

9. याचिकाकर्ता ने प्रस्तुत किया है कि कमांडर बी.के. अहलूवालिया तत्कालीन कमांड के न्यायिक अधिवक्ता थे, जिन्होंने आरोप पत्र और परिस्थितिजन्य पत्र, अर्थात् याचिकाकर्ता के सैन्य न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए आवेदन, का मसौदा तैयार करने में जांच अधिकारी की मदद की थी।

10. यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि तत्कालीन वाइस एडमिरल एल. रामदास, जो पूर्वी नौसेना कमान के फ्लैग ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ थे, संयोजक प्राधिकारी थे, जिन्होंने 1 नवंबर, 1990 को याचिकाकर्ता पर सैन्य न्यायालय द्वारा कार्यवाही का निर्णय लिया था।

11. हम यह भी ध्यान दें सकते हैं कि याचिकाकर्ता ने 2 जनवरी 1991 को आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ सैन्य न्यायालय की कार्यवाही पर रोक लगाने का अनुरोध किया गया था। उच्च न्यायालय ने 4 जनवरी 1991 को सैन्य न्यायालय कार्यवाही पर रोक लगा दी। यह आदेश 26 फरवरी 1991 को निरस्त कर दिया गया।

12. सैन्य न्यायालय की कार्यवाही पुनः शुरू हुई, जिसके परिणामस्वरूप 15 मार्च, 1991 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए 27 आरोपों में से आठ में उसे दोषी पाया गया तथा उसे श्रेणी ए कैदी के रूप में कठोर कारावास की सजा दी गई; नौसेना सेवा से बर्खास्तगी; चूक होने पर छह माह के कारावास के लिए 10,000/- रुपये का जुर्माना लगाया गया। याचिकाकर्ता को 15 मार्च, 1991 से

कड़ी हिरासत में रखा गया था। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 16 मार्च, 1991 को न्यायिक अधिवक्ता जनरल (नौसेना) द्वारा न्यायिक समीक्षा तक सजा को निलंबित करने का अनुरोध किया गया था, जिसे नौसेना प्रमुख द्वारा दिनांक 17 मार्च, 1991 को पारित आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था और 18 मार्च, 1991 को याचिकाकर्ता को जेल भेज दिया गया था।

13. याचिकाकर्ता ने 15 मार्च, 1991 के आदेश पर रोक लगाने के लिए फिर से आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। 28 मार्च, 1991 के आदेश द्वारा, सजा को रुपये की राशि में व्यक्तिगत मुचलके 20,000/- की समान राशि की दो प्रतिभूतियों के साथ सशर्त प्रस्तुत करने पर रोक लगा दी गई थी। जबकि अन्य दो सजा बरकरार रखी गई। याचिकाकर्ता को संयोजक प्राधिकरण को दो प्रतिभू प्रस्तुत करने पर हिरासत से रिहा कर दिया गया था।

14. यह रिकॉर्ड में है कि 8 मार्च, 1991 को उक्त संयोजक प्राधिकरण ने सजा के निलंबन के पिछले आदेश को वापस लेने के लिए आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का रुख किया, जिसे 24 जून, 1991 के एक आदेश द्वारा वापस ले लिया गया था। 21 जुलाई, 1991 को याचिकाकर्ता को फिर से हिरासत में ले लिया गया। हमारे सामने पेश किए गए रिकॉर्ड में यह बताया गया है कि हालांकि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था कि याचिकाकर्ता को नौसेना हिरासत में रखा जाए, जबकि वह 30 जुलाई, 1991 तक केंद्रीय जेल (तिहाड़) में बंद था।

15. याचिकाकर्ता की रिट याचिका का निपटारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने 22 जुलाई, 1991 को किया था, जिसमें याचिकाकर्ता को नौसेना अधिनियम की धारा 160 या 162 के तहत अन्य उपाय करने के साथ-साथ नौसेना अधिनियम की धारा 164 के तहत सजा के अंतरिम निलंबन की अनुमति दी गई थी।

16. याचिकाकर्ता को रिट याचिका में उनके द्वारा उठाए गए सभी दावों और दलीलों पर अनुरोध करने की स्वतंत्रता दी गई थी, जिन पर उनके गुण-दोष के आधार पर विचार करने की आवश्यकता थी, हालांकि न्यायालय ने सजा के निलंबन को 30 अगस्त, 1991 तक बढ़ा दिया ताकि याचिकाकर्ता न्यायिक समीक्षा के लिए नौसेना प्राधिकरण से संपर्क कर सके।

17. याचिकाकर्ता द्वारा न्यायाधीश महाधिवक्ता (नौसेना) द्वारा नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 160 के तहत न्यायिक समीक्षा के लिए 29 जुलाई, 1991 को एक आवेदन किया गया था। यह समीक्षा 19-20 अगस्त, 1991 को नई दिल्ली में अभिनिर्धारित थी। यह उल्लेखनीय है कि जब तक याचिकाकर्ता की न्यायिक समीक्षा विचार के लिए आई, तब तक वाइस एडमिरल एल. रामदास को एडमिरल के रूप में पदोन्नत किया गया था और उन्हें नौसेना प्रमुख के रूप में भी नियुक्त किया गया था।

18. 27 अगस्त, 1991 को एडमिरल एल. रामदास द्वारा याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि और सजा के आदेश की न्यायिक समीक्षा में एक आदेश पारित

किया गया था। इस आदेश द्वारा, एडमिरल एल. रामदास ने याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आरोप यानी आरोप संख्या 20 को हटा दिया और उसकी कारावास की सजा को पहले से ही जेल में बिताए गए समय तक कम कर दिया। हालांकि अन्य दो सजाएं बरकरार रखी गईं। हमें सूचित किया जाता है कि छह महीने के और कारावास से बचने के लिए, याचिकाकर्ता ने सजा के आदेश के संदर्भ में 5 सितंबर, 1991 को 10,000/- रुपये का जुर्माना जमा किया।

19. प्रत्यर्थियों के उपरोक्त आदेशों से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में रि.या.(सि.) सं.3582/1997 दायर किया। यह याचिका सशस्त्र बल अधिकरण को हस्तांतरित कर दी गई, जहां इसे हस्त.आ.संख्या 23/2009 के रूप में पंजीकृत किया गया। सशस्त्र बल अधिकरण ने मामले पर विस्तार से विचार किया। 8 दिसंबर, 2010 के निर्णय द्वारा अधिकरण ने आरोप संख्या 7 के अलावा अन्य सभी आरोपों पर सैन्य न्यायालय के दोष के निष्कर्षों को खारिज कर दिया। अधिकरण ने सेवा से बर्खास्तगी की सजा को भी बरकरार रखा।

20. जहाँ तक वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का संबंध है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रत्यर्थियों द्वारा विनियमन 156 नौसेना (अनुशासन और विविध प्रावधान) विनियम, 1965 (नौसेना विनियम 'इसके बाद) के उल्लंघन पर कानूनी आपत्ति व्यक्त की गई है।

21. विनियम 156 (नौसेना अनुशासन और विविध प्रावधान) विनियम, 1965 के कार्यकरण पर विचार करने से पहले, हम सुविधा के लिए विनियम 153, 155, 156 और 157 के प्रावधानों को निर्धारित कर सकते हैं जो निम्नानुसार हैं:-

“153. विचारण के लिए आवेदन - परिस्थितिजन्य पत्र

(1) किसी भी व्यक्ति के सैन्य न्यायालय द्वारा परीक्षण के लिए आवेदन निम्नानुसार किया जाएगा:-

सामान्य माध्यमों से संयोजक अधिकारी को एक पत्र भेजा जाएगा, जिसे आगे परिस्थितिजन्य पत्र कहा जाएगा, जिसमें उन परिस्थितियों की रिपोर्ट होगी जिन पर आरोपों या उन आरोपों जो उनके घटित होने के क्रम में आधारित हैं, और अपराध की वास्तविक प्रकृति और सीमा को दर्शाने के लिए पर्याप्त विवरण दिया जाएगा; जब शब्दों को अपराध का सार बनाया जाता है, तो उन्हें पूरी तरह और ठीक-ठीक व्यक्त किया जाना चाहिए। पत्र में ऐसे तथ्यों को रखा जाए जो आरोपों से सीधे संबंधित हों ना कि किसी भी तरह से अभियुक्त के पिछले चरित्र, आचरण या दोषसिद्धि का उल्लेख किया जाये, या उसमें ऐसे तथ्यों का संदर्भ नहीं दिया जाए जो उसके लिए प्रतिकूल हो ।

(2) जब धारा 55 के तहत कोई आरोप लगाया जाता है तो परिस्थितिजन्य पत्र में हर उस संबंध का विशिष्ट विवरण होगा जिसमें यह आरोप लगाया जाता है कि अभियुक्त की गलती थी।

(3) अभियुक्त द्वारा पूछताछ के दौरान या जाँच के दौरान या आरोप लगाए जाने के बाद दिया गया कोई भी बयान परिस्थितिजन्य पत्र में तब तक शामिल नहीं किया जाएगा जब तक कि यह कथित अपराध का एक अनिवार्य हिस्सा न हो, जैसे

कि झूठी गवाही का आरोप और ऐसा बयान एक अलग दस्तावेज में परिस्थितिजन्य पत्र के संलग्नक के रूप में अग्रेषित किया जाएगा और परिस्थितिजन्य पत्र में ही इस तथ्य का संदर्भ दिया जाएगा कि ऐसा बयान दिया गया था और इसे संलग्नक में शामिल किया गया था।

(4) यदि कमांडिंग ऑफिसर सैन्य न्यायालय के लिए अनुरोध करने के अपने कारणों के बारे में आगे स्पष्टीकरण देना चाहे, जिसमें अभियुक्त के पिछले आचरण या पूर्ववृत्त का उल्लेख हो, तो वह मौखिक रूप से या संयोजक प्राधिकारी को अलग से पत्र लिखकर ऐसा करेगा।

155. आरोप पत्र. (1) आरोप पत्र में उन आरोपों की सूची होगी जिन पर अभियुक्त पर विचारण का प्रस्ताव है।

(2) अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, एक आरोप पत्र में एक या अधिक आरोप हो सकते हैं।

(3) प्रत्येक आरोप पत्र आरोपित व्यक्ति के नाम और विवरण के साथ शुरू होगा और उसका पद, संख्या और उस जहाज के बारे में बताएगा जिससे वह संबंधित है।

(4) प्रत्येक आरोप एक अलग अपराध से संबंधित होगा और किसी भी मामले में एक ही आरोप में वैकल्पिक रूप से अपराध का वर्णन नहीं किया जाएगा।

(5) यदि अपराध को सृजित करने वाला कानून उसे कोई विशिष्ट नाम देता है, तो आरोप में अपराध का वर्णन केवल उसी नाम से किया जा सकता है।

(6) यदि अपराध को सृजित करने वाला कानून उसे कोई विशिष्ट नाम नहीं देता है, तो अपराध की परिभाषा का इतना हिस्सा अवश्य बताया जाना चाहिए कि अभियुक्त को उस मामले

की जानकारी हो जाए जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है।

(7) आरोप में उस कानून और कानून की धारा का उल्लेख किया जाएगा जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है।

(8) तथ्य यह है कि लगाया गया आरोप, इस कथन के समतुल्य है कि आरोपित अपराध गठित करने के लिए कानून द्वारा अपेक्षित प्रत्येक कानूनी शर्त विशेष मामले में पूरी हो गई है।

(9) आरोप में कथित अपराध के समय और स्थान तथा उस व्यक्ति, यदि कोई हो, जिसके विरुद्ध आरोप लगाया गया था या उस वस्तु, यदि कोई हो, के संबंध में ऐसे विवरण शामिल होंगे जो अभियुक्त को उस मामले की सूचना देने के लिए यथोचित रूप से पर्याप्त हों जिसका उस पर आरोप लगाया गया है।

(10) जब मामले की प्रकृति ऐसी हो कि पूर्वगामी उप-विनियम में उल्लिखित विवरण अभियुक्त को उस मामले की पर्याप्त सूचना नहीं देते हैं जिसके लिए उस पर आरोप लगाया गया है, तो आरोप में उस तरीके का विवरण भी शामिल किया जाएगा जिसमें कथित अपराध किया गया था, यह उस उद्देश्य के लिए पर्याप्त होगा, जब तक कि ऐसे विवरण परिस्थितिजन्य पत्र में नहीं बताए गए हों।

(11) जब अभियुक्त पर आपराधिक विश्वासघात या बेईमानी द्वारा धन के दुरुपयोग या उसके भंडारण का आरोप लगाया जाता है, तो उन सभी भंडारित मदों की सकल राशि या योग निर्दिष्ट करना पर्याप्त होगा जिसके संबंध में अपराध का होना उल्लेखित है, और वे तिथियां जिनके बीच अपराध किया जाना अभिकथित है, विशेष मदों या सटीक तिथियों को निर्दिष्ट किए बिना, और इस प्रकार विरचित आरोप एक अपराध के लिए

आरोप माना जाएगा, बशर्ते कि ऐसी तिथियों में से पहली और अंतिम तिथि के बीच का समय एक वर्ष से अधिक नहीं होगा।

(12) जहां यह माना जाता है कि किसी अभियुक्त ने अन्य अपराधों के अतिरिक्त बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने का अपराध किया है, वहां आरोप पत्र में बिना छुट्टी के अनुपस्थित रहने के आरोप को भी शामिल किया जाएगा ताकि न्यायालय को अभियुक्त को वेतन और भत्ते से वंचित करने की सजा देने की शक्ति प्राप्त हो सके।

(13) जहां आरोप किसी ऐसे तथ्य को साबित करने के लिए है जिसके संबंध में आरोपित अपराध के कारण हुई किसी सिद्ध हानि या क्षति की भरपाई के लिए वेतन और भत्ते के लिए कोई हर्जाना दिया जा सकता है, वहां आरोप में इन तथ्यों का विवरण और उस हानि या क्षति की राशि होगी जिसे आरोपित करने का आरोप है।

(14) प्रत्येक आरोप में, किसी अपराध का वर्णन करने में प्रयुक्त शब्द उस कानून द्वारा दिए गए अर्थ में प्रयुक्त माने जाएंगे जिसके अंतर्गत ऐसा अपराध दंडनीय है।

(15) आरोप पत्र निर्धारित प्रपत्र में या परिस्थितियों के अनुरूप उसके निकटतम प्रारूप में होगा।

156. आरोपों और साक्ष्य की जांच - (1) जब संयोजक प्राधिकारी को पहले संदर्भित परिस्थितिजन्य पत्र और अन्य दस्तावेज प्राप्त हो जाते हैं, तो वह सैन्य न्यायालय द्वारा कार्यवाही का आदेश देने से पहले खुद को संतुष्ट करेगा कि आरोप सही और पर्याप्त हैं और वे उचित रूप से और सावधानीपूर्वक तैयार किए गए हैं।

(2) संयोजक प्राधिकारी तब तक सैन्य न्यायालय की कार्यवाही नहीं करेगा जब तक कि वह स्वयं को संतुष्ट नहीं कर लेता है

कि साक्ष्य यदि अखंडनीय या अवर्णनीय होगा तो शायद दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होगा।

(हमारे द्वारा रेखांकित)

157. संयोजक प्राधिकारी द्वारा प्रभारों में संशोधन (1) संयोजक प्राधिकारी अपने समक्ष प्रस्तुत आरोप पत्र में संशोधन कर सकता है और उसके बाद एक नया आरोप पत्र तैयार किया जाएगा और संयोजक प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा और इस प्रकार संशोधित आरोप पत्र मूल आरोप पत्र द्वारा प्रतिस्थापित हो जायेगा।

(2) जहां आरोप पत्र में संशोधन नहीं किया गया है, वहां इसे संयोजक प्राधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा।

विनियमन 156 का उल्लंघन- संयोजक प्राधिकरण द्वारा विवेक का उपयोग नहीं

22. इस आपत्ति के समर्थन में अधिवक्ता श्री डी.जे. सिंह द्वारा दो तरफा दलीलें दी गई हैं। पहला आरोप पत्र (विनियम 153 के तहत) पढ़ने से लेकर न्यायालय सामग्री (विनियम 156 के तहत) को लाने तक प्रत्यर्थियों द्वारा की गई कार्यवाही और उठाए गए कदमों पर आधारित है। दूसरी दलील यह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोपों का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री या सबूत नहीं था और कमांडिंग अधिकारी और संयोजक प्राधिकरण ने न्यायालय सामग्री को लाने का निर्देश देते हुए मामले के इस महत्वपूर्ण पहलू की अनदेखी करते हुए बहुत जल्दबाजी में काम किया। यह बताया गया है कि अधिकरण ने याचिकाकर्ता को केवल आरोप संख्या 7 में दोषी पाया है। 1 नवंबर को, जब

सैन्य न्यायालय द्वारा मुकदमे का आदेश दिया गया था, तो आरोप का समर्थन करने के लिए सबूत का एक शब्द भी नहीं था।

23. 1 नवंबर, 1990 को याचिकाकर्ता को एक आरोप पत्र पढ़ा गया जिसमें (नौसेना अनुशासन और विविध प्रावधान) विनियमन , 1965 के विनियमन 153 के अनुसार 28 आरोप शामिल थे। विनियमन 153 के अनुसार, याचिकाकर्ता को अंतिम आरोप पत्र पढ़े जाने के बाद, एक परिस्थितिजन्य पत्र, जो कि सैन्य न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए आवेदन की प्रकृति का था, कमांडिंग ऑफिसर रियर एडमिरल एस.के.दास द्वारा तैयार किया जाना अपेक्षित था।

24. इस आवेदन में आरोपों का विवरण और जिस सामग्री पर उन्हें तैयार किया गया था, उसे प्रस्तुत करना आवश्यक था। इस आशय का बयान कमांडिंग ऑफिसर द्वारा संयोजक प्राधिकरण को दिए गए 1 नवंबर, 1990 के आवेदन के पैरा 56 में पाया जाता है। प्रारंभिक आरोप पत्र के साथ परिस्थितिजन्य पत्र और अभियोजन पक्ष में गवाहों की सूची के साथ-साथ आरोपों के समर्थन में साक्ष्य के सारांश सहित अन्य दस्तावेजों को इसके बाद संयोजक प्राधिकरण को भेजे जाने की आवश्यकता थी।

25. याचिकाकर्ता ने हमारा ध्यान विनियमन 155 की ओर आकर्षित किया है, जिसमें उन आरोपों की सूची की आवश्यकता निर्धारित की गई है जिन पर अभियुक्त व्यक्ति पर विचारण किया जाना प्रस्तावित है। प्रत्येक आरोप एक

अलग अपराध से निपटने के लिए आवश्यक है और किसी भी मामले में, एक ही आरोप के विकल्प में अपराध का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

26. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि विनियमन 156 और 159 परिस्थितिजन्य पत्र के साथ-साथ संयोजक प्राधिकरण द्वारा पूर्व सूचित दस्तावेजों की प्राप्ति पर लागू होते हैं। विनियमन 156 के अधिदेश के अनुसार, संयोजक प्राधिकरण को खुद को संतुष्ट करने की आवश्यकता है कि आरोप सही और पर्याप्त हैं, कि वे उचित रूप से और सावधानीपूर्वक तैयार किए गए हैं। इसके अलावा, संयोजक प्राधिकरण को यह संतुष्ट करने की आवश्यकता है कि साक्ष्य, यदि विरोधाभासी या अस्पष्ट है, तो संभवतः दोषसिद्धि सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होगा। संयोजक प्राधिकरण इसके बाद ही सैन्य न्यायालय बुलाने का निर्देश देने के लिए अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। कमांडिंग ऑफिसर को कमांडर-इन-चीफ को एक सिफारिश करनी होती है। सैन्य न्यायालय बुलाना है या नहीं, इसका निर्णय कमांडर-इन-चीफ को करना होता है।

27. विनियमन 156 के अनुपालन का महत्व विनियमन 157 के तहत संयोजक प्राधिकरण को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र से बहुत अधिक है ताकि उसे प्रस्तुत किए गए आरोपों में संशोधन किया जा सके और उसके बाद एक नया आरोप पत्र तैयार करने का निर्देश दिया जा सके। विनियमन 157 के अनुसार, संयोजक प्राधिकरण को परिस्थितिजन्य पत्र पर ऐसा निर्णय लेना था जो आरोप पत्र और साक्ष्य के सारांश के आधार पर आवश्यक हो।

28. उपरोक्त विनियमों के संदर्भ में संतुष्टि के बाद, विनियमन 159 के तहत, संयोजक प्राधिकरण को उसके द्वारा सैन्य न्यायालय के अध्यक्ष के रूप में नामित अधिकारी को वारंट जारी करने की आवश्यकता होती है, जिसमें उसे सैन्य न्यायालय का निर्देश दिया जाता है।

29. ऐसा प्रतीत होता है कि आरोप पत्र और परिस्थितिजन्य पत्र की विषयवस्तु के बीच असंगति थी। आरोप पत्र में, गबन के आरोप लगाए गए थे, जबकि परिस्थितिजन्य पत्र में, विभिन्न मरम्मत कार्यों के बदले में जहाज के वार्ड रूम और कैप्टन के केबिन से संबंधित उद्देश्यों के लिए धन के उपयोग का संदर्भ दिया गया था।

30. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री डी.जे. सिंह ने विस्तार से तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को आरोप पत्र पढ़ना (जो 1 नवंबर, 1990 को लगभग 14:30 बजे शुरू हुआ) एक लंबी प्रक्रिया थी और यह उसी दिन लगभग 16:00 बजे ही पूरी हुई। पूर्व सूचित विनियमों के अनुसार, परिस्थितिजन्य पत्र उसके बाद ही तैयार किया जाना चाहिए था। प्रारंभिक आरोप पत्र, गवाहों की सूची, 58 गवाहों के साक्ष्य का सारांश और अभियोजन पक्ष के 148 साक्ष्यों की सूची के साथ इस तरह के परिस्थितिजन्य पत्र को संयोजक प्राधिकरण के विचार के लिए भेजा जाना आवश्यक था।

प्रत्यर्थियों के अनुसार, जाहिर है यह भी 1630 घंटे के बाद 1 नवम्बर, 1990 को ही किया गया था ।

31. याचिकाकर्ता ने बताया है कि दस्तावेजों का यह समूह हजार पृष्ठों से अधिक का था और इसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों की संख्या और प्रकृति को देखते हुए सूक्ष्म सांख्यिकीय डेटा और विवरण के साथ बड़ी संख्या में दस्तावेज शामिल थे।

32. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विनियमन 156 के तहत संयोजक प्राधिकरण द्वारा विचार पूरे मामले का एक बहुत ही महत्वपूर्ण चरण है। श्री सिंह ने जोरदार आग्रह किया है कि बड़ी संख्या में दस्तावेज जो संयोजक प्राधिकरण के समक्ष रखे गए थे, उन पर विस्तृत और संयोजक प्राधिकरण द्वारा उचित रूप से विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि विनियमों के लिए आरोपों और समर्थन में साक्ष्य के लिए उनकी 'संतुष्टि' की आवश्यकता होती है। प्रत्यर्थियों का दावा है कि संयोजक प्राधिकरण ने 1 नवंबर, 1990 को ही परिस्थितिजन्य साक्ष्य और इन सभी दस्तावेजों की जांच की थी।

33. जहां तक संयोजक प्राधिकारी का संबंध है, नौसेना विनियमन के विनियमन 157 के अंतर्गत एक संशोधित आरोप पत्र पर भी उनके द्वारा हस्ताक्षर किए गए तथा 1 नवंबर, 1990 को उसे जारी किया गया। संशोधित आरोप पत्र में मूल आरोप पत्र के आरोप संख्या 27 को हटा दिया गया। इसके अतिरिक्त, संयोजक प्राधिकारी ने 1 नवम्बर, 1990 को ही सैन्य न्यायालय का आदेश दिया तथा विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति भी की।

34. गौरतलब है कि आरोपों की सुनवाई इस तिथि को लगभग 14:30 बजे शुरू हुई और लगभग 16:00 बजे समाप्त हुई। यह निर्विवाद है। इसके बाद परिस्थितिजन्य पत्र तैयार किया गया। याचिकाकर्ता ने आग्रह किया है कि 1 नवंबर, 1990 को घटनाओं का समय प्रत्यर्थियों के इस तर्क को झुठलाता है कि विनियमन 156 का उचित अनुपालन किया गया था और संयोजक प्राधिकारी द्वारा इसके संदर्भ में विवेक का प्रयोग किया गया था।

35. संशोधित आरोप पत्र, परिस्थितिजन्य पत्र और दस्तावेज याचिकाकर्ता को अगले ही दिन यानी 2 नवंबर, 1990 को विचारण न्यायिक अधिवक्ता, कमांडर बी. के. अहलूवालिया द्वारा दिए गए थे।

36. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता बताते हैं कि आरोप को हटाने के परिणामस्वरूप, परिस्थितिजन्य पत्र में संबंधित भागों में संशोधन की आवश्यकता थी। ऐसा नहीं किया गया। इस परिस्थिति को याचिकाकर्ता के इस तर्क के समर्थन में भी दबाया गया है कि संयोजक प्राधिकरण के समक्ष रखी गई सामग्री पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था।

37. यदि प्रत्यर्थी की दलील स्वीकार की जाती है, तो इसके लिए उसे यह सुझाव स्वीकार करने की आवश्यकता होगी कि उसे परिस्थितिजन्य पत्र तैयार करना होगा और रिकॉर्ड का संकलन करना होगा, जिसमें 1000 पृष्ठों से अधिक के दस्तावेज शामिल हों; 55 से अधिक गवाहों के साक्ष्य का सारांश; साक्ष्यों की प्रतियां, आदि को उसी दिन लगभग 16:00 बजे याचिकाकर्ता को आरोप पत्र

पढ़कर सुनाए जाने के बाद, संयोजन प्राधिकारी के अवलोकन हेतु आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। इसका यह भी अर्थ है कि संयोजक प्राधिकारी ने परिस्थितिजन्य पत्र के साथ-साथ संलग्न अभिलेख, आरोप पत्र की जांच की, उस पर विचार किया तथा सैन्य न्यायालय बुलाने, विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति करने तथा आरोप पत्र में संशोधन करने का आदेश पारित किया।

38. इस प्रस्तुती के समर्थन में कि संयोजक अधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग नहीं किया गया क्योंकि इसके लिए पर्याप्त समय नहीं था, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बॉम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 10 अक्टूबर, 1998 को रिपोर्ट किए गए निर्णय **(5) बॉम सीआर 620 जहूर अहमद बनाम भारत संघ** पर भरोसा किया है। यह मामला विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम, (सी.ओ.एफ.पी.ओ.एस.ए) के तहत निवारक हिरासत के संदर्भ में उठा। याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया कि भारी मात्रा में दस्तावेजों को देखते हुए, निरोधक अधिकारी के पास हिरासत का आदेश जारी करने से पहले सामग्री पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था और इस तरह निरोधक अधिकारी द्वारा कोई विचार नहीं किया गया। याचिकाकर्ता की ओर से यह आग्रह किया गया था कि विशाल मात्रा के दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के पास हिरासत का आदेश जारी करने से पहले सामग्री पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय नहीं था और इस तरह हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी द्वारा कोई विचार नहीं किया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डी. जे. सिंह ने इस घोषणा के पैरा 22 का उल्लेख किया है और प्रस्तुत किया है कि इस पैराग्राफ में तथ्यात्मक वर्णन तत्काल मामले के साथ सभी चौकों पर है। उसी का प्रासंगिक भाग आगे दिया गया है:

“22. यह सच है कि (उमेश चंद्र वर्मा बनाम भारत संघ), 1985 आपराधिक अपीलीय संख्या 878 में 20 दिसंबर, 1985 को निर्णय दिया गया था, शीर्ष न्यायालय ने हिरासत के आदेश को रद्द कर दिया था, जो 13 जून, 1985 की रात को पारित किया गया था, जब हिरासत में लिए गए व्यक्ति से बड़ी मात्रा में प्रतिबंधित सोना बरामद किया गया था। बंदी से 13 जून, 1985 को लगभग पूरे दिन पूछताछ की गई और दोपहर 1 बजे उसे सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 104 के तहत औपचारिक रूप से गिरफ्तार कर लिया गया। उसी रात हिरासत में लेने का आदेश दिया गया। दस्तावेजों पर भरोसा करते हुए, जिसमें शाम 6 बजे तैयार किया गया गिरफ्तारी ज्ञापन भी शामिल था, न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि दस्तावेज और हिरासत का प्रस्ताव हिरासत प्राधिकारी के समक्ष शाम 6 बजे के बाद रखा गया होगा, ऐसी स्थिति में हिरासत प्राधिकारी के लिए उसी रात आदेश जारी करना निश्चित रूप से कठिन होता। इन विशिष्ट तथ्यों के आधार पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि हिरासत में लेने वाले अधिकारी ने संभवतः अपने सामने रखे गए भारी मात्रा में दस्तावेजी साक्ष्यों पर ध्यान नहीं दिया होगा और इसलिए, हिरासत के आदेश को रद्द कर दिया। सम्मान के साथ ऐसा कह सकते हैं कि, हम नहीं सोचते कि उपरोक्त निर्णय का अनुपात हमारे सामने आये इस मामले के तथ्यों पर लागू होता है। हमलोग पहले ही संकेत दे चुके हैं, और बाद में विस्तार से बताएंगे कि प्रस्ताव 2301 पृष्ठों में से 2272 के साथ हिरासत प्राधिकरण तक बहुत पहले पहुंच गया था।

यह प्रस्ताव 18 अप्रैल, 1996 को मुख्य कार्यालय को भेजा गया था, जिसमें 2272 पृष्ठ थे। यह केवल कुछ पृष्ठों में अतिरिक्त सामग्री थी, (सभी 29 पृष्ठों में) जो बाद की तिथियों पर भेजी गई थी, जिसे प्रायोजक प्राधिकरण के मुख्य कार्यालय द्वारा तुरंत हिरासत में लेने वाले प्राधिकरण को भेज दिया गया था।

23. दोनों विद्वान अधिवक्ता श्री खान और श्री गुप्ते ने इस न्यायालय के तीन बिना रिपोर्ट किए गए निर्णयों पर भरोसा जताया। मोहम्मद अहमद इब्राहिम की आपराधिक रिट याचिका संख्या 397/1992, जिस पर 22 अप्रैल, 1992 को निर्णय हुआ (न्या.पुराणिक एवं न्या.चपलगांवकर), प्रस्ताव 262 पृष्ठों का था। हिरासत का आदेश 9 अप्रैल, 1991 को दिल्ली में हिरासत प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया था, हालांकि प्रायोजक प्राधिकरण द्वारा 9 अप्रैल, 1991 को ही मुंबई से दस्तावेजों के साथ कागजात दिल्ली भेज दिए गए थे। कुछ दस्तावेज 9 अप्रैल, 1991 को ही अस्तित्व में आए थे। कुछ दस्तावेज 4 और 8 अप्रैल, 1991 को अस्तित्व में आए थे और उन्हें हिरासत के आदेश से पहले सप्ताह का होने के तौर पर संदर्भित किया गया है। इन विशिष्ट तथ्यों में ही यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सामग्री इतनी विशाल थी और हिरासत प्राधिकरण के पास बचा समय इतना कम था कि उसके सामने रखी गई सामग्री पर हिरासत प्राधिकरण की ओर से दिमाग का उपयोग नहीं किया गया था और इसलिए, हिरासत का आदेश निरस्त होने योग्य था। ऐसा करते समय, इस न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह यह सामान्य प्रस्ताव नहीं रखना चाहता कि यदि हिरासत का आदेश उसी दिन पारित कर दिया जाता है जिस दिन प्रस्ताव प्राप्त हुआ था या उसके तुरंत बाद, तो हिरासत का आदेश गलत होगा। मामले के तथ्यों के आधार पर, विद्वान न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि साक्ष्य इतने अधिक थे और हिरासत प्राधिकारी के पास इतना कम समय था कि उसका एकमात्र निष्कर्ष यह था कि

हिरासत प्राधिकारी की ओर से विवेक का प्रयोग नहीं किया गया था। ये टिप्पणियां मोहम्मद अहमद इब्राहिम के मामले में दिए गये निर्णय के पैरा 6 में पाई जाती हैं।

24. 1992 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 991 में श्रीमती. वर्षा विलास जाधव बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य ने 23 अक्टूबर, 1992 (न्या.पुराणिक और न्या.दा सिल्वा,) को निर्णय लिया, हिरासत का आदेश 15 जुलाई, 1992 को पारित किया गया था। प्रस्ताव में 240 पृष्ठों में कई दस्तावेज शामिल थे, जो बारीकी से टाइप किए गए थे। हिरासत प्राधिकारी को प्रस्ताव और दस्तावेज 15 जुलाई, 1992 को शाम 4 बजे ही मिल गए और उसी दिन शाम 7 बजे हिरासत का आदेश पारित कर दिया गया। इन विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, इस मामले के विशाल रिकॉर्ड को देखते हुए, जिसमें 240 पृष्ठ बारीकी से टाइप किए गए थे, जिसमें स्थानीय भाषा में कई दस्तावेज शामिल थे, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के लिए पूरे दस्तावेजों को पढ़ना, उन पर विचार करना, उसे हिरासत के आधार तैयार कर और हिरासत के आदेश जारी करना और उन्हें टाइप करवाना और उन पर हस्ताक्षर करना संभव नहीं था - यह सब करना वो भी तीन घंटे के भीतर, जैसा कि यहाँ तर्क दिया गया था। इसलिए, हिरासत के आदेश को लेकर विवेक का उपयोग न किये जाने का कारण इसे ही माना गया और इसलिए इसे खारिज कर दिया गया। ये निष्कर्ष निर्णय के पैरा 14 में पाए जाते हैं।”

(हमलों के द्वारा रेखांकित)

निस्संदेह यह निर्णय निवारक निरोध के आदेश के संदर्भ में दिया गया है। हालाँकि, यह निर्णय लेने से पहले आवश्यक अभिलेखों की जांच करने के

लिए पर्याप्त समय की उपलब्धता के महत्व को रेखांकित करता है, ताकि इस दलील का समर्थन किया जा सके कि एक सूचित निर्णय था, और विवेक के उचित प्रयोग के बाद आया था।

39. परिस्थितिजन्य पत्र की जांच और उस पर गहन विचार; आरोप पत्र; साक्ष्य का सारांश; सूक्ष्म सांख्यिकीय विवरणों से संबंधित प्रदर्श; आरोप पत्र को संशोधित करने और पुनः टाइप करने का निर्णय; सैन्य न्यायालय से संबंधित विभिन्न आदेशों को जारी करना, ऐसा दावा किया जाता है कि 1 नवंबर, 1990 को इस विशाल रिकॉर्ड की प्राप्ति पर ही संयोजक प्राधिकारी द्वारा पूरा कर लिया गया था। दिलचस्प बात यह है कि सभी ने 16:00 घंटे के बाद (जब आरोपों की सुनवाई पूरी हो गई थी) ऐसा करने का दावा किया, जबकि केवल दो घंटे का ही कार्यकाल उपलब्ध था। कार्यकाल के उपलब्ध घंटों के भीतर उपरोक्त अभ्यास को सार्थक रूप से पूरा करना मानवीय रूप से असंभव है।

40. इस संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1100, राजीव अरोड़ा बनाम भारत संघ** में रिपोर्ट किए गए निर्णय की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

“14. उच्च न्यायालय ने अपने विवादित निर्णय में तकनीकी दलील के आधार पर इस मुद्दे पर विचार किया, अर्थात् इस तरह की गैर-परीक्षण से अपीलकर्ता को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है। यदि कानून के मूल सिद्धांतों का पालन नहीं किया

गया है या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन हुआ है, तो उच्च न्यायालय को न्यायिक समीक्षा के अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए था। सैन्य न्यायालय कार्यवाही बुलाए जाने से पहले, कानूनी आवश्यकताओं को इसलिए पूरा किया जाना चाहिए। संबंधित अधिकारी की संतुष्टि इस निष्कर्ष पर आधारित होनी चाहिए कि साक्ष्य उन आरोपों पर वाद को उचित ठहराता है। बिना किसी प्रमाण के ऐसी संतुष्टि नहीं मिल सकती है। यदि कोई आदेश बिना किसी साक्ष्य के पारित किया जाता है, तो उसे विकृत माना जाना चाहिए।

(हमलोगों के द्वारा रेखांकित)

41. प्रत्यर्थियों ने घटनाओं के इस मोड़ के लिए स्पष्टीकरण देने का साहस भी नहीं किया है। इसलिए हम याचिकाकर्ता की आपत्ति में सार पाते हैं कि संयोजक प्राधिकरण ने विनियमन 156 की आवश्यकताओं का पालन नहीं किया। प्रत्यर्थियों के पास उपलब्ध सामग्री के लिए विवेक प्रयोग नहीं किया गया था। संयोजक प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोपों के बारे में संतुष्ट होने के लिए रिकॉर्ड पर सामग्री की जांच नहीं की।

जब साक्ष्य का सारांश पूरा नहीं हुआ तो आरोपों को अंतिम रूप दिया गया

42. अब हम इस निवेदन के दूसरे चरण की जांच कर सकते हैं कि संयोजक प्राधिकरण द्वारा विनियमन 156 का उल्लंघन किया गया है। 1 नवंबर, 1990 के आरोप पत्र में आरोप सं.7. यह एकमात्र आरोप है जिसमें याचिकाकर्ता को सशस्त्र बल अधिकरण द्वारा दोषी पाया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान

अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि साक्ष्य का सारांश जो संयोजक प्राधिकरण के समक्ष रखा गया था, उसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ इस आरोप पर कुछ भी सबूत नहीं था।

43. अभियोजन पक्ष को पता था कि आरोप संख्या 7 पर कोई सबूत नहीं था। जब याचिकाकर्ता का विचारण निर्देशित और शुरू किया गया था। अभि.सा.4 - एलटी. ए. के. आहूजा, जिन्होंने न्यायालय में बयान दिया था, इस आरोप के पर, 27 जून, 1990 को साक्ष्य के सारांश में दर्ज किए गए अपने बयान में इस आरोप पर एक शब्द भी नहीं कहा था।

44. सैन्य न्यायालय की कार्यवाही शुरू होने के बाद, साक्ष्य के सारांश में अतिरिक्त बयान दर्ज किए गए। भारतीय स्टेट बैंक के शाखा प्रबंधक श्री डी.के. दास का बयान 8 नवंबर, 1990 को दर्ज किया गया था, जबकि वायुसेना नौसेना आवास बोर्ड के निदेशक वित्त विंग कमांडर के.सी. डावरा (सेवानिवृत्त) का बयान 30 नवंबर, 2011 को साक्ष्य के सारांश के भाग के रूप में दर्ज किया गया था। यह याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप संख्या 7 पर साक्ष्य खोजने का प्रयास था।

45. उपरोक्त परिस्थिति याचिकाकर्ता के इस तर्क का सार प्रदान करती है कि श्री डी. के. दास, शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक और विंग कमांडर डावरा के बयान में अभियोजन पक्ष द्वारा 8 नवंबर, 1990 और 30 नवंबर, 1990 को हेरफेर किया गया था। श्री दास को अभि.सा.12 के रूप में पूछताछ की गई,

जबकि श्री डावरा को अभि.सा.8 के रूप में सैन्य न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता के विचारण के दौरान पूछताछ की गई।

46. ऐसा प्रतीत होता है कि सैन्य न्यायालय बुलाने का निर्देश देने वाला आदेश और विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति का आदेश तब पारित किया गया जब आरोप संख्या 7 के समर्थन में रिकॉर्ड पर कोई सबूत/सामग्री नहीं थी।

47. विनियमन 156 के अनुसार, संयोजक प्राधिकारी को न केवल यह संतुष्ट होना आवश्यक है कि आरोप उचित रूप से तैयार किए गए हैं, बल्कि यह भी कि यदि साक्ष्य असंदिग्ध या अस्पष्ट हैं, तो वे संभवतः "दोषसिद्धि" सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त होंगे। इस मुद्दे पर कि 'संतुष्टि' क्या होगी, **(1997) 7 एससीसी 622, मनुसुखलाल विठ्ठलदास चौहान बनाम गुजरात राज्य** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ उपयोगी हो सकता है, जिसमें न्यायालय ने इस प्रकार कहा था: -

“19. चूंकि "मंजूरी" की वैधता मामले के तथ्यों के साथ-साथ जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और साक्ष्य के लिए मंजूरी देने वाले प्राधिकरण द्वारा विवेक प्रयोग पर निर्भर करती है, यह आवश्यक है कि मंजूरी देने वाले प्राधिकरण को वास्तविक संतुष्टि पैदा करने के लिए अपने स्वयं के स्वतंत्र दिमाग को लागू करना होगा कि क्या अभियोजन को मंजूरी दी जानी है या नहीं। मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के विवेक पर किसी भी तरह का दबाव नहीं होना चाहिए और न ही किसी बाहरी बल को किसी न किसी तरह

से निर्णय लेने के लिए उस पर कार्रवाई करनी चाहिए। चूंकि मंजूरी देने या न देने का विवेकाधिकार आत्यन्तिक रूप से मंजूरी देने वाले प्राधिकरण में निहित है, इसलिए इसका विवेकाधिकार किसी भी बाहरी विचार से प्रभावित नहीं हुआ है। यदि यह दिखाया जाता है कि मंजूरी देने वाला प्राधिकारी किसी भी कारण से अपने स्वतंत्र विवेक को लागू करने में असमर्थ था या मंजूरी देने के लिए एक दायित्व या मजबूरी या बाधा के तहत था, तो आदेश इस कारण से यह गलत होगा कि प्राधिकरण का "मंजूरी नहीं देने का विवेक" हटा लिया गया था और अभियोजन को मंजूरी देने के लिए यांत्रिक रूप से कार्य करने के लिए मजबूर किया गया था।”

(हमलोगों द्वारा रेखांकित)

48. **(2005) 8 एस. सी. सी. 296 पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम अल्पना राय और अन्य** में, सर्वोच्च न्यायालय ने नोट किया है कि किसी निर्णय के लिए पर्याप्त कारण प्रदान करना न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण की ओर से विवेक के अनुप्रयोग का संकेत दे सकता है।

49. हम **(1985) एस. सी. आर. (1) 866 एस. सी. आर. राजिंदर कुमार किन्द्रा बनाम दिल्ली प्रशासन** में निर्धारित आधिकारिक और बाध्यकारी पर भी ध्यान दें सकते हैं, जिसमें न्यायालय का ध्यान एक कर्मचारी पर कंपनी की चेकबुक के कथित लापरवाहीपूर्ण संचालन के कारण कदाचार के आरोप से था। इस आरोप को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि मध्यस्थ अपीलकर्ता के तर्कों पर विचार करने में असफल रहा। एक मुद्दा यह भी उठाया गया कि

क्या आरोप को साबित करने के लिए कोई सबूत है। यह मुद्दा भी उठाया गया कि क्या आरोप को पुष्ट करने के लिए कोई सबूत मौजूद है। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि जहां कोई अर्ध-न्यायिक अधिकरण या मध्यस्थ बिना किसी कानूनी सबूत के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करता है और निष्कर्ष अनुमानों और अनुमानों पर आधारित होते हैं, वहां जांच में *विवेक का प्रयोग न करने* की *दुर्बलता होती है और यह जांच दोषपूर्ण* हो जाती है।

50. याचिकाकर्ता ने आगे बताया कि सैन्य न्यायालय की कार्यवाही 10 नवंबर, 1990 को शुरू हुई। हालांकि, साक्ष्य का सारांश पूरा नहीं था और 8 नवंबर, 1990 से 3 दिसंबर, 1990 के बीच भी दर्ज नहीं किया गया था। यह शिकायत की गई है कि यह नौसेना विनियमन (भाग- II) के विनियमन 149 का उल्लंघन था, जिसमें परीक्षण के लिए आवेदन करने से पहले साक्ष्य के पूर्ण सारांश को रिकॉर्ड करने की परिकल्पना की गई है। ये तथ्य स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के इस तर्क का समर्थन करते हैं कि अभियोजन मामले में अंतर और खामियों को भरने के लिए प्रत्यर्थियों द्वारा अलग-अलग अवसरों पर साक्ष्य के सारांश की रिकॉर्डिंग की गई थी। यह भी पुष्टि करता है याचिकाकर्ता की शिकायत है कि साक्ष्य का सारांश उसे विभिन्न अवसरों पर विचारण न्यायिक अधिवक्ता द्वारा दिया गया था।

51. जहाँ तक तत्काल पूर्व निर्णय में पूर्व-सूचित न्यायिक पूर्ववर्ती में निर्धारित सिद्धांतों के अनुप्रयोग का संबंध है, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि 1

नवंबर, 1990 को आरोप संख्या 7 पर कोई सबूत नहीं था। साक्ष्य के सारांश में, जिस पर संयोजक प्राधिकरण द्वारा इस आरोप पर विचारण करने का निर्देश दिया जा सकता था। इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि सैन्य न्यायालय का निर्देश देने के लिए संयोजक प्राधिकरण का निर्देश आरोपों के समर्थन में किसी भी सामग्री के बजाय अनुमानों और अनुमानों पर आधारित था। संयोजक प्राधिकरण के समक्ष आरोप संख्या 7 के लिए कोई सबूत नहीं था। संयोजक प्राधिकरण विनियमन 156 के अधिदेश का पालन करने में विफल रहा।

दस्तावेजों के निरीक्षण की अनुमति देने में विफलता

52. याचिकाकर्ता ने 7 नवंबर, 1990 को दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए कहा, जिस पर अभियोजक को याचिकाकर्ता को निरीक्षण की अनुमति देने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ता के बचाव अधिकारी (वर्तमान अधिवक्ता), जो दिल्ली में तैनात थे, ने दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए 19 नवंबर, 1990 को विशाखापत्तनम का दौरा किया। यह शिकायत की जाती है कि किसी भी सार्थक निरीक्षण की अनुमति नहीं दी गई थी क्योंकि अभियोजक द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, उन्हें अलग नहीं किया गया था, बल्कि वे भारी फाइलों और रिकॉर्ड का हिस्सा थे। जिसमें अप्रासंगिक डेटा और दस्तावेज थे जो मामले से संबंधित नहीं थे। मुकदमे से पहले याचिकाकर्ता को दिया गया यह एकमात्र निरीक्षण था।

53. दस्तावेजों की प्रतिलिपि के लिए अनुरोध किया गया था जिसे विचारण न्यायिक अधिवक्ता ने खारिज कर दिया था। भारी मात्रा में दस्तावेजों के निरीक्षण के लिए कुल दो घंटे का समय दिया गया था। याचिकाकर्ता के बचाव अधिकारी ने 20 नवंबर, 1990 और 21 नवंबर, 1990 के पत्र के माध्यम से अपना विरोध दर्ज किया। इस विरोध को देखते हुए, विचारण जज एडवोकेट ने 23 नवंबर, 1990 के पत्र के माध्यम से अभियोजक को दस्तावेजों की फोटोकॉपी प्रदान करने का निर्देश दिया और 29 नवंबर, 1990 के पत्र के माध्यम से अभियोजक को संबंधित दस्तावेजों को हरी झंडी दिखाने का निर्देश दिया।

जवाब में, अभियोजक ने 30 नवंबर, 1990 को एक पत्र को संबोधित किया जिसमें उन्होंने ऐसा करने में असमर्थता व्यक्त की क्योंकि यह उनकी रणनीति का खुलासा करेगा। इस प्रकार याचिकाकर्ता को न तो रिकॉर्ड के उचित निरीक्षण की अनुमति दी गई और न ही उनकी प्रतियां प्रस्तुत की गईं।

जज एडवोकेट का परिवर्तन

54. याचिकाकर्ता ने विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति के संबंध में भी शिकायत की है और इसकी वैधता को चुनौती दी है। दलील यह है कि सैन्य न्यायालय की कार्यवाही के दौरान विचारण न्यायिक अधिवक्ता को व्यापक अधिकार दिए जाते हैं। इसलिए एक स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष विचारण

न्यायिक अधिवक्ता ('टीजेए') का होना ज़रूरी है, खास तौर पर ऐसा व्यक्ति जो सैन्य न्यायालय से पहले विचारण के विषय से जुड़ा न हो।

55. इस संबंध में, यह बताया गया है कि नौसेना विनियमन के विनियमन 159 में विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति अनिवार्य है, जो सैन्य न्यायालय कार्यवाही का संचालन करेगा। विचारण न्यायिक अधिवक्ता के कर्तव्यों को नौसेना विनियमन के विनियमन 159 के तहत निर्दिष्ट किया गया है, जो इस प्रकार है:-

“159. सैन्य न्यायालय का आयोजन (1) जब संयोजक प्राधिकारी को यह संतुष्टि हो जाती है कि सभी दस्तावेज व्यवस्थित हैं और सैन्य न्यायालय बुलाया जाना चाहिए, तो वह सैन्य न्यायालय के अध्यक्ष के रूप में अपने द्वारा नामित अधिकारी को आदेश प्रपत्र में आरोप पत्र की एक प्रति के साथ एक वारंट जारी करेगा, जिसमें उसे वारंट में उल्लिखित स्थान और तिथि पर सैन्य न्यायालय इकट्ठा करने का निर्देश दिया जाएगा।

(2) परिस्थितिजन्य पत्र राष्ट्रपति या न्यायालय के अन्य सदस्यों को तब तक नहीं भेजा जाएगा जब तक कि न्यायालय समवेत न हो जाए और विधिवत शपथ नहीं ले ले।

(3) साक्ष्य का सारांश कार्यवाही के किसी भी चरण में राष्ट्रपति या न्यायालय के अन्य सदस्यों को किसी भी कारण से नहीं दिया जाएगा।”

56. विचारण न्यायिक अधिवक्ता ('टीजेए') को कानूनी तौर पर यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि विचारण, भारतीय नौसेना के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए विनियमों के अनुसार चलाया जाए। उपरोक्त से, ऐसा

प्रतीत होता है कि विचारण न्यायिक अधिवक्ता सैन्य न्यायालय के सदस्यों के साथ उस समय नहीं बैठते हैं जब वे आरोपों पर अपने निष्कर्ष देते हैं, लेकिन वह विनियमन 157 के तहत सजा तय करते समय उनके साथ बैठते हैं।

57. विनियमन विचारण न्यायिक अधिवक्ता को और अधिक शक्तियाँ प्रदान करते हैं। गवाह के सामने रखे गए प्रश्न के विपक्ष में किसी आपत्ति के लिए निर्णय विनियमन 179 के तहत टी.जे.ए. द्वारा किया जाना आवश्यक है। विनियमन 182 के आधार पर, टी. जे. ए. को अभियोजक द्वारा गवाह को बुलाने या वापस बुलाने की अनुमति देने को लेकर सहमत है। साक्ष्य का अंतिम सारांश भी टी. जे. ए. द्वारा किया जाता है। विनियमन 191 के तहत, टी.जे.ए. यह सुनिश्चित करने के लिए भी जिम्मेदार है कि सैन्य न्यायालय की कार्यवाही को विधिवत दर्ज और तैयार किया जाए। इसलिए यह आवश्यक है कि टी.जे.ए. एक स्वतंत्र व्यक्ति हो जो बिना भेदभाव के निष्पक्ष तरीके से कार्य करता है और यह सुनिश्चित करता है कि सैन्य न्यायालय कानून की आवश्यकताओं के साथ-साथ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उचित अनुपालन में आयोजित किया जाए।

58. याचिकाकर्ता बताते हैं कि कमांडर बी. के. अहलूवालिया उस समय पूर्वी नौसेना कमान के जज एडवोकेट थे। इसलिए वे उस कमान के कानूनी विभाग के प्रमुख थे। यह निर्विवाद है कि कमांडर अहलूवालिया याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र और परिस्थितिजन्य पत्र का मसौदा तैयार करने से जुड़े थे। उन्होंने

सैन्य न्यायालय बुलाने से पहले अधिकारियों को सलाह दी और उसके बाद, अभियोजक को भी सलाह दे रहे थे। फिर भी, 1 नवंबर, 1990 के आदेश से उन्हें याचिकाकर्ताओं के सैन्य न्यायालय के लिए भी विचारण न्यायिक अधिवक्ता नियुक्त किया गया।

59. आरोप पत्र तैयार करने में विचारण न्यायालय अधिवक्ता कमांडर बी.के. अहलूवालिया की संलिप्तता और अभियोक्ता को आरोप तैयार करने में सलाह देने, परिस्थितिजन्य पत्र और रिकॉर्ड तैयार करने में उनकी संलिप्तता को देखते हुए याचिकाकर्ता के बचाव अधिकारी ने 20 नवंबर, 1990 को एक पत्र लिखकर विचारण न्यायिक अधिवक्ता को बदलने का अनुरोध किया था, क्योंकि विचारण-पूर्व कार्यवाही में उनकी भागीदारी से उनकी निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता धूमिल हो जाती। यह आग्रह किया गया है कि दस्तावेजों के संबंध में उनके निर्देशों का पालन करने में टी.जे.ए. की विफलता, उनकी तटस्थता की कमी को दर्शाती है।

60. याचिकाकर्ता ने 1 दिसंबर, 1990 के अपने पत्र में भी विचारण जज एडवोकेट की निष्पक्षता के बारे में अपनी आशंकाओं को व्यक्त किया। हालाँकि, सुनवाई जज एडवोकेट को बदलने के उनके अनुरोध को 5 दिसंबर, 1990 को संयोजक प्राधिकरण द्वारा भेजे गए पत्र के माध्यम से अस्वीकार कर दिया गया था।

61. याचिकाकर्ता ने यह भी तर्क दिया है कि परिस्थितिजन्य पत्र और अभिलेखों को उसी जज एडवोकेट जनरल द्वारा प्रसंस्कृत किया गया था, जिन्होंने जांच बोर्ड और साक्ष्य के सारांश के आधार पर संयोजक प्राधिकरण को सिफारिशें की थीं। उन्होंने सैन्य न्यायालय की कार्यवाही में भी भाग लिया था। याचिकाकर्ता द्वारा विनियमों में प्रावधानों के अनुसार अनुरोधित न्यायिक समीक्षा को इसी जज एडवोकेट जनरल के समक्ष रखा गया था। इस प्रकार याचिकाकर्ता ने उनकी निष्पक्षता पर आपत्ति जताई थी।

62. यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले में प्रथम दृष्टया दृष्टिकोण अपनाने और अभिलेखों के प्रसंस्करण में सक्रिय रूप से शामिल होने तथा की गई सिफारिशों के बाद, याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही और आदेश जज एडवोकेट जनरल की ओर से संस्थागत पूर्वाग्रह के कारण भी दोषपूर्ण हैं।

63. विचारण न्यायिक अधिवक्ता के संस्थागत पक्षपात के पहलू पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय के **1980 (3) एसएलआर 124, संसार चंद बनाम भारत संघ एवं अन्य** के फैसले पर भरोसा जताया है। इस मामले में भी सेना अधिनियम के तहत एक सामान्य सैन्य न्यायालय में न्यायधीश अधिवक्ता द्वारा पक्षपात के संबंध में आपत्ति जताई गई थी। इस मुद्दे पर न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

“32. यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि न केवल पक्षपात बल्कि पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना भी अयोग्यता का कारण

बनेगी। एस. पार्थसारथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 1974 (1) एस. एल. आर. 427 में उच्चतम न्यायालय ने इसी तरह के प्रश्न पर विचार करते हुए इस प्रकार टिप्पणी की:

फिर सवाल यह है: पक्षपात की वास्तविक संभावना मौजूद है या नहीं, इसका निर्धारण न्यायालय द्वारा परिस्थितियों से वस्तुनिष्ठ रूप से अनुमान लगाने की संभावनाओं के आधार पर किया जाना है या उन छापों के आधार पर किया जाना है जो पीड़ित पक्ष या बड़े पैमाने पर जनता के दिमाग में उचित रह सकते हैं।

वास्तविक 'संभावना' और 'उचित संदेह' के परीक्षण वास्तव में एक दूसरे के साथ असंगत हैं। हम समझते हैं कि समीक्षा करने वाले प्राधिकारी को अपने सामने मौजूद पूरे साक्ष्य के आधार पर निर्णय लेना चाहिए। क्या एक समझदार व्यक्ति परिस्थितियों में यह अनुमान लगाएगा कि पक्षपात की वास्तविक संभावना है। न्यायालय को यह देखना चाहिए कि अन्य लोगों की क्या धारणा है। यह इस सिद्धांत का अनुसरण करता है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि न्याय किया जा रहा है, ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए। अगर सही सोच वाले व्यक्ति को लगता है कि जांच अधिकारी की ओर से पक्षपात की वास्तविक संभावना है, तो उसे जांच नहीं करनी चाहिए, जहाँ भी, पक्षपात की वास्तविक संभावना हो। अनुमान या अटकलबाजी पर्याप्त नहीं होगी। ऐसी परिस्थितियाँ अवश्य होनी चाहिए, जिनसे विवेकशील व्यक्ति यह सोचे कि जांच अधिकारी अपराधी के प्रति पूर्वाग्रही होगा। न्यायालय यह नहीं पूछेगा कि क्या वह वास्तव में पूर्वाग्रही था। यदि कोई विवेकशील व्यक्ति मौजूदा परिस्थितियों के

आधार पर सोचता है कि उसके पूर्वाग्रही होने की संभावना है, तो यह निर्णय को रद्द करने के लिए पर्याप्त है। [मेट्रोपॉलिटन प्रॉपर्टीज कंपनी में लॉर्ड डेनिंग एम. आर. के अनुसार देखें (एफ. जी. सी.) लिमिटेड वी.लैनन (1968) पी. 707-आदि पर 3 डब्ल्यू. एल. आर. 694।”

64. इस निवेदन के समर्थन में *जे.टी. 2000 (5) एस.सी. 135 भारत संघ बनाम चरणजीत सिंह गिल* में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भी निर्भरता रखी गई है।

65. जैसा कि ऊपर देखा गया है, सैन्य न्यायालय से पहले स्टेज पर मामले में हर कदम के साथ कमांडर बी. के. अहलूवालिया की भागीदारी की सीमा को देखते हुए, वह मामले के परिणाम में रुचि रखने के लिए बाध्य है। आरोप तैयार करने और परिस्थितिजन्य पत्र का मसौदा तैयार करने में सहायक होने के कारण, याचिकाकर्ता के खिलाफ उसके नर्सिंग पूर्वाग्रह की संभावना है।

निष्पक्ष न्यायिक समीक्षा से इनकार- नौसेना अधिनियम की धारा 160 और 161 का कोई अनुपालन नहीं

66. याचिकाकर्ता की ओर से, यह प्रस्तुत किया गया था कि प्रत्यर्थियों द्वारा नौसेना अधिनियम, 1957 की धारा 160 के तहत उन्हें निष्पक्ष न्यायिक समीक्षा से वंचित कर दिया गया था। याचिकाकर्ता ने नौसेना अधिनियम की धारा 162 के संदर्भ में न्यायाधीश महाधिवक्ता द्वारा न्यायिक समीक्षा के लिए 29 जुलाई, 1991 को एक आवेदन किया। यह प्रस्तुत किया जाता है कि

न्यायिक समीक्षा अनुचित तरीके से की गई थी व्यक्ति जिसने प्रथम दृष्टया आरोपों में योग्यता पाई थी और 1 नवंबर, 1990 को सैन्य न्यायालय बुलाते हुए आदेश पारित किया था। इस संबंध में तथ्यात्मक वर्णन निर्विवाद है।

67. याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र में संशोधन करने के साथ-साथ सैन्य न्यायालय बुलाने का निर्देश देने वाले 1 नवंबर, 1990 के आदेश को वाइस एडमिरल एल. रामदास (ईस्टर नौसेना कमान के तत्कालीन फ्लैग ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ के रूप में) द्वारा पारित किया गया था। इससे पहले, 1989 में, उन्होंने जांच बोर्ड की भी शुरुआत की थी। इसके बाद, इसकी रिपोर्ट प्राप्त होने पर, उन्होंने जांच अधिकारी को नियुक्त किया और साक्ष्य के सारांश को दर्ज करने का आदेश दिया। तत्कालीन वाइस एडमिरल रामदास ने 1 नवंबर, 1990 को विचारण न्यायधीश अधिवक्ता और अभियोजक की नियुक्ति का आदेश पारित किया था।

68. 1991 में, 29 जुलाई, 1991 को याचिकाकर्ता का आवेदन प्राप्त होने पर, न्यायधीश महाधिवक्ता ने नौसेना अधिनियम की धारा 160 के तहत समीक्षा की। नौसेना अधिनियम की धारा 160 के अनुसार, उनकी रिपोर्ट नौसेना प्रमुख के समक्ष रखी गई थी। इस तिथि को वाइस एडमिरल एल. रामदास को एडमिरल के रूप में पदोन्नत किया गया था और उन्हें नौसेना प्रमुख के रूप में नियुक्त किया गया था। इस प्रकार न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट को उसी व्यक्ति के समक्ष रखा गया जिसने पहले ही प्रारंभिक चरणों में मामले की जांच

कर ली थी, प्रथमदृष्टया आरोप पत्र में योग्यता पाई और सैन्य न्यायालय बुलाने का निर्देश दिया।

69. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायिक समीक्षा करने के तरीके पर आपत्ति जताते हुए नौसेना अधिनियम की धारा 160 और 161 पर भरोसा किया है। याचिकाकर्ता के तर्क की जांच करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, हम उस वैधानिक व्यवस्था पर ध्यान दें सकते हैं जो लागू होती है। इस संबंध में, नौसेना अधिनियम की धारा 160 और 161 पर विस्तार से विचार किया जाना चाहिए और यह निम्नानुसार है:-

“160. नौसेना के न्यायाधीश महाधिवक्ता द्वारा न्यायिक समीक्षा

(1) सैन्य न्यायालय या अनुशासनात्मक न्यायालयों द्वारा किए गए सभी वादों की समीक्षा नौसेना के न्यायाधीश महाधिवक्ता द्वारा या तो स्वयं के प्रस्ताव पर या किसी सजा या निष्कर्ष से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा निर्धारित समय के भीतर किए गए आवेदन के आधार पर की जाएगी, और नौसेना के न्यायाधीश महाधिवक्ता ऐसी समीक्षा की रिपोर्ट को ऐसी सिफारिशों के साथ नौसेना प्रमुख को उनके विचारार्थ और ऐसी कार्रवाई के लिए भेजेंगे, जिसे नौसेना प्रमुख उचित समझें।

(2) जहाँ किसी व्यथित व्यक्ति ने उप-धारा (1) के तहत आवेदन किया है, वहाँ नौसेना का न्यायाधीश महाधिवक्ता, यदि मामले की परिस्थितियों की आवश्यकता हो, तो उसे व्यक्तिगत रूप से या किसी कानूनी व्यवसायी या भारतीय नौसेना के एक अधिकारी द्वारा सुनवाई का अवसर दे सकता है।

161. नौसेना प्रमुख द्वारा किया गया विचार (1) रिपोर्ट और अनुशंसाओं की प्राप्ति पर, यदि कोई हो, धारा 160 के तहत, नौसेना प्रमुख मृत्युदंड के सभी मामलों में और उन सभी मामलों में जहां राष्ट्रपति द्वारा सैन्य न्यायालय द्वारा कार्यवाही का आदेश दिया जाता है, और अन्य मामलों में कार्यवाही और रिपोर्ट को ऐसी सिफारिशों के साथ केंद्र सरकार को प्रेषित कर सकता है जिसे वह करना उचित समझे।

(2) धारा 160 या इस धारा की कोई बात नौसेना न्यायाधीश महाधिवक्ता या नौसेनाध्यक्ष को इस अधिनियम के तहत पारित दोषमुक्ति के आदेश को रद्द करने के लिए सिफारिश करने या केंद्र सरकार को इसे रद्द करने के लिए अधिकृत नहीं करेगी।

70. धारा 160 को पढ़ने से पता चलता है कि न्यायाधीश महाधिवक्ता द्वारा समीक्षा या तो स्वतः संज्ञान द्वारा हो सकती है या किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा किये गये आवेदन द्वारा हो सकता है। न्यायाधीश महाधिवक्ता से अपेक्षा की जाती है कि वह ऐसी सिफारिशों के साथ ऐसी समीक्षा की रिपोर्ट नौसेना प्रमुख को अपने विचार के लिए प्रेषित करे जो न्यायसंगत और उचित प्रतीत हो। और ऐसी कार्रवाई के लिए जो नौसेना प्रमुख को उचित लगे। तत्काल मामले में, याचिकाकर्ता ने नौसेना अधिनियम की धारा 160 के तहत एक आवेदन द्वारा समीक्षा की मांग की।

71. हम देखते हैं कि धारा 161 के तहत कोई वैधानिक आदेश नहीं है कि नौसेना प्रमुख को अनिवार्य रूप से न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट पर स्वयं विचार करना चाहिए।

नौसेना अधिनियम की धारा 161 नौसेना प्रमुख को कार्यवाही के साथ-साथ न्यायाधीश अधिवक्ता की रिपोर्ट केंद्र सरकार को वर्तमान मामलों में ऐसी सिफारिशों के साथ भेजने की अनुमति देती है जो वह उचित समझे। इस प्रकार नौसेना प्रमुख को मृत्युदंड के मामलों के अलावा अन्य मामलों में विवेकाधिकार प्रदान किया जाता है कि क्या न्यायिक समीक्षा पर न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट पर विचार किया जाए या मामले को केंद्र सरकार को भेजा जाए।

72. सवाल यह उठता है कि क्या याचिकाकर्ता के खिलाफ नौसेना प्रमुख के मन में पक्षपात की वास्तविक संभावना थी और इसलिए उन्हें स्वयं न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट पर विचार नहीं करना चाहिए था और इस पर विचार के लिए केंद्र सरकार को भेजना चाहिए था।

73. याचिकाकर्ता द्वारा चुनौती इस सुव्यवस्थित सिद्धांत पर टिकी हुई है कि कोई भी स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता है। हमें इस बात की जांच करने की आवश्यकता है कि क्या नौसेना प्रमुख द्वारा न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट की जांच उनके अपने मामले में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के समान है। इस संबंध में *ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 150 ए.के. क्राईपाक और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य* में रिपोर्ट किए गए निर्णय में निर्धारित बाध्यकारी सिद्धांतों का उपयोगी संदर्भ दिया जा सकता है। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय एक चयन बोर्ड के गठन से संबंधित था। सदस्यों में से एक के चयन के लिए विचार किया जाना था। उस संदर्भ में, यह देखा

गया कि एक व्यक्ति के लिए अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश होना न्यायाधीश के सभी नियमों के खिलाफ था। न्यायालय ने कहा कि असली प्रश्न यह नहीं था कि वह पक्षपाती था या यह भी नहीं कि किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति को साबित करना मुश्किल है। यह देखने की आवश्यकता है कि क्या यह विश्वास करने के लिए उचित आधार है कि किसी व्यक्ति के पक्षपाती होने की संभावना है। केवल पक्षपात का संदेह पर्याप्त नहीं है। पक्षपात होने का तार्किक कारण होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि पूर्वाग्रह के प्रश्न पर निर्णय करते समय न्यायालय को मानवीय संभावनाओं और मानवीय आचरण के सामान्य क्रम को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

74. न्यायिक न्यायाधिकरणों के संबंध में "पूर्वाग्रह के सिद्धांत" को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत (1959) **अनुपूरक 1 एससीआर.319 गुल्लापल्ली नागेश्वर राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम और अन्य** में निर्धारित किए गए थे। जिन दो सिद्धांतों पर जोर दिया गया वे थे:

- (i) कोई भी व्यक्ति अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं होगा; (ii) न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि स्पष्ट रूप से और निस्संदेह किया गया प्रतीत होना चाहिए। इन दोनों उक्तिओं का परिणाम यह है कि यदि किसी न्यायिक निकाय का कोई सदस्य किसी विवाद में किसी पक्ष के पक्ष या विपक्ष में पक्षपात (चाहे वह वित्तीय हो या अन्य) के अधीन है, या ऐसी स्थिति में है कि एक पूर्वाग्रह मौजूद

माना जाना चाहिए, तो उसे निर्णय में भाग नहीं लेना चाहिए या अधिकरण में नहीं बैठना चाहिए।

75. हम उपयोगी रूप से **1987 4 एस. सी. सी. 611 रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ** में रिपोर्ट किए गए सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। इस मामले में अपीलकर्ता को वरिष्ठ के आदेशों की अवज्ञा करने के लिए सेना से बर्खास्त कर दिया गया था और वही अधिकारी जिसके आदेशों की अवज्ञा करने का आरोप उसने लगाया था, सैन्य न्यायालय के सदस्य के रूप में बैठा था। यह माना गया कि कार्यवाही पक्षपात से प्रभावित थी। हम सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियों को उपयोगी रूप से उद्धृत कर सकते हैं जो इस प्रकार हैं: -

“15. विवाद का दूसरा भाग प्रत्यर्थी 4 की ओर से कथित पूर्वाग्रह के प्रभाव के बारे में है। पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना का परीक्षण यह है कि क्या एक तर्कसंगत व्यक्ति, प्रासंगिक जानकारी द्वारा वशीभूत हो, यह सोच सकता था कि पूर्वाग्रह की संभावना थी और क्या प्रत्यर्थी 4 केवल एक विशेष तरीके द्वारा मामले में फैसला करने के लिए तैयार था।

16. किसी निर्णय का सार यह है कि वह न्यायिक प्रक्रिया के समुचित पालन के पश्चात बनाया गया हो; उसे पारित करने वाला न्यायालय या अधिकरण कम से कम प्राकृतिक न्याय की न्यूनतम आवश्यकताओं का पालन करता हो, तथा निष्पक्ष व्यक्तियों से बना हो जो निष्पक्ष रूप से, बिना किसी भेद-भाव के तथा सद्भावनापूर्वक कार्य करते हों। पक्षपात या निष्पक्षता की कमी का परिणाम होने वाला निर्णय अमान्य है तथा परीक्षण "न्यायहीनता का प्रतीक है"। (देखें *वासिलियाडेस बनाम वासिलियाडेस एआईआर 1945 पीसी 38*.)

17. पक्षपात की संभावना के परीक्षण के लिए जो बात प्रासंगिक है वह है पक्षकार के मन में इसको लेकर आशंका से संबंधित तर्कसंगतता। न्यायाधीश के लिए उचित दृष्टिकोण यह नहीं है कि वह अपने मन को देखे और खुद से ईमानदारी से पूछे, "क्या मैं पक्षपाती हूँ?" बल्कि उसके सामने वाले पक्षकार के मन को भी देखे।

22. इस प्रकार परीक्षण से यह निष्कर्ष अपरिहार्य हो जाता है कि, पूर्ववर्ती घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, सैन्य न्यायालय में प्रत्यर्थी 4 की भागीदारी ने कार्यवाही को गैर-न्यायिक बना दिया।"

76. **(1974) 3 एससीसी 459 एस. पार्थसारथी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में,** एक जांच अधिकारी द्वारा की गई जांच के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था, जिसके खिलाफ पक्षपात का आरोप लगाया गया था और यह साबित हो गया था। इस प्रकार न्यायालय पक्षपात की संभावना के परीक्षण से चिंतित था। यह माना गया कि यदि सही सोच वाले व्यक्ति को लगता है कि किसी अधिकारी की ओर से पक्षपात की वास्तविक संभावना है, तो उसे जांच नहीं करनी चाहिए। यह आगे देखा गया कि आशंका या अनुमान पर्याप्त नहीं होंगे, ऐसी परिस्थितियाँ मौजूद होनी चाहिए जिनसे उचित व्यक्ति यह सोचेगा कि ऐसी आशंका या अनुमान है कि पूछताछ करने वाला अधिकारी अपचारी अधिकारी के खिलाफ पूर्वाग्रह से ग्रस्त होगा।

77. इस मोड़ पर, हम **(1969) 1 क्यूबी 577, 599 मेट्रोपॉलिटन प्रॉपर्टीज कंपनी (एफ.जी.सी.) लिमिटेड बनाम लैनन** में दर्ज निर्णय से एक अंश को

उपयोगी रूप से पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं, जिसमें लॉर्ड डेनिंग एम.आर. ने इस प्रकार टिप्पणी की थी: -

“.....इस बात पर विचार करते समय कि क्या पक्षपात की वास्तविक संभावना थी, न्यायालय स्वयं न्यायाधीश के मन को नहीं देखता है या अधिकरण के अध्यक्ष के मन को नहीं देखता है, या जो भी हो, जो न्यायिक क्षमता के अंतर्गत बैठता है। यह नहीं देखता है कि क्या वास्तव में इस बात की संभावना थी कि वह दूसरे पक्ष की कीमत पर एक पक्षकार का पक्ष लेगा या लिया होगा। न्यायालय इस बात पर ध्यान देता है कि दूसरे लोगों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। भले ही वह यथासंभव निष्पक्ष हों, फिर भी यदि सही सोच वाला व्यक्ति सोचता है कि, इन परिस्थितियों में, उनके पक्षपात की वास्तविक संभावना है, तो उन्हें नहीं बैठना चाहिए।”

78. **एआईआर 2006 एससी 2544 मेसर्स क्रॉफर्ड बेली एंड कंपनी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य** में दिए गए फैसले में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों में उन परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनके तहत पूर्वाग्रह का सिद्धांत, यानी कोई भी व्यक्ति अपने मामले में न्यायाधीश नहीं हो सकता है, लागू किया जा सकता है। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि इस सिद्धांत को लागू करने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि संबंधित अधिकारी का व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या संबंध या व्यक्तिगत हित है या वह संबंधित मामले में व्यक्तिगत रूप से जुड़ा हुआ था या उसने पहले ही किसी न किसी तरह से निर्णय ले लिया है जिसका वह समर्थन करने में रुचि रखता है।

79. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिंह ने हमारा पक्ष रखा है।

2012 (12) एस. सी. 331 रमेश अहलूवालिया बनाम पंजाब राज्य में रिपोर्ट की गई न्यायिक घोषणा पर भी ध्यान दें। इस मामले में, स्कूल के प्रिंसिपल ने अपचारी कर्मचारी के खिलाफ स्कूल प्रबंधन के मामले का समर्थन किया था। अनुशासनात्मक कार्यवाही में एक ही स्कूल के प्रधानाचार्य द्वारा भागीदारी के औचित्य के बारे में एक सवाल उठा। यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रधानाचार्य की भागीदारी अनुचित थी क्योंकि उन्होंने पहले ही स्कूल प्रबंधन के मामले का समर्थन किया था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस स्थापित कानूनी सिद्धांत को दोहराया कि न्यायाधीश न केवल किया जाना चाहिए बल्कि ऐसा प्रतीत भी होना चाहिए।

80. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **2011 8 एस.सी.सी. 380 पी.डी. दिनाकरन (आई) न्यायाधीश जांच समिति मामले में** निर्धारित सिद्धांत पर भी भरोसा किया है।

एक विस्तृत चर्चा के बाद, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय के पैरा 43 में बाध्यकारी सिद्धांत निर्धारित किए गए थे, न्यायालय ने मंजूरी के साथ क्वींस पीठ के एक निर्णय का हवाला दिया जो इस प्रकार है:-

“43. *आर.वी. बनाम रैंड* [(1866) एलआर 1 क्यूबी 230] में क्वीन्स बेंच को यह विचार करने के लिए बुलाया गया था कि क्या दो न्यायाधीशों के क्रमशः एक अस्पताल और एक मैत्रीपूर्ण सोसायटी के न्यासी होने के तथ्य, जिनमें से प्रत्येक ने कॉरपोरेट

फंड चार्ज करने वाले बांड पर ब्रैडफोर्ड कॉर्पोरेशन को पैसा उधार दिया था, कार्यवाही में भाग लेने से अयोग्य घोषित कर दिए गए थे, जिसके परिणामस्वरूप मिल मालिकों की अनुमति के बिना कुछ धाराओं का पानी लेने के लिए कॉर्पोरेशन के पक्ष में प्रमाण पत्र जारी किया गया था। प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए, ब्लैकबर्न, जे. ने निम्नलिखित नियम विकसित किया:

“... इसमें कोई संदेह नहीं है कि जांच के विषय में कोई भी प्रत्यक्ष आर्थिक हित, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, जांच के संबंध में किसी व्यक्ति को मामले में न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अयोग्य घोषित कर देता है और यदि किसी भी संभावना से ये सज्जन, यद्यपि मात्र न्यासी थे, कीमतों के लिए उत्तरदायी हो सकते थे, या उनके ऐसा होने के कारण वे अन्य आर्थिक हानि या लाभ के लिए उत्तरदायी हो सकते थे, तो हमें इस प्रश्न को अलग तरीके से सोचना चाहिए: उसके लिए हित अभिनिर्धारित हो रहा हो। लेकिन एकमात्र तरीका जिससे तथ्य उनकी निष्पक्षता को प्रभावित कर सकते हैं, वह यह होगा कि उनमें उन लोगों के पक्ष को लेकर झुकाव हो सकता है जिनके लिए वे न्यासी थे; और यह हित की प्रकृति में आपत्ति नहीं है, बल्कि पक्षपात को चुनौती दी गई है। जहाँ कहीं भी इस बात की वास्तविक संभावना है कि न्यायाधीश, रिश्तेदार या किसी अन्य कारण से, किसी एक पक्षकार के पक्ष में पक्षपात करेगा, इसलिए वहाँ उसके द्वारा कार्रवाई किया जाना बहुत गलत होगा; और हम यह नहीं कह रहे हैं कि जहाँ इस प्रकार का वास्तविक पूर्वाग्रह है, वहाँ यह न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करेगा; लेकिन वर्तमान मामले में इस बात पर संदेह करने का कोई आधार नहीं है कि न्यायाधीशों ने पूरी

तरह से ईमानदारी से काम किया; और एकमात्र सवाल यह है कि क्या सख्त कानून में, ऐसी परिस्थितियों में, ऐसे न्यायाधीशों का प्रमाण पत्र शून्य है, क्योंकि अगर उनका आर्थिक हित होता तो ऐसा होता; और हम सोचिए कि आर. वी.डीन एंड चैंप्टर ऑफ रोचेस्टर [(1851) 17 क्यू. बी. 1] एक प्राधिकरण है, कि जिन परिस्थितियों से पक्ष लेने का संदेह पैदा हो सकता है, वे आर्थिक हित के समान प्रभाव पैदा नहीं करते हैं।”

81. रि.या.(सि.) सं. 237/1966 में (ग) 4 मई, 1967 को **सुमेर चंद जैन बनाम भारत संघ**, उच्चतम न्यायालय ने पाया कि यदि “कर्तव्य” और “हित” को अलग रखा जा सकता है तो अर्ध-न्यायनिर्णायक की व्यक्तिगत वरीयता के कुछ संकेत पक्षपात के आधार पर कार्यवाही को दूषित नहीं कर सकते हैं। यह मामला विभागीय पदोन्नति समिति के एक सदस्य से संबंधित था जो उम्मीदवारों में से एक के पक्ष में था। उनके पक्षपात के बावजूद, समिति की कार्यवाही को दूषित नहीं किया गया क्योंकि समिति के सदस्यों के कर्तव्य और हित के बीच कोई टकराव नहीं था और कोई भी अपने स्वयं के मामले में न्यायाधीश नहीं था।

82. इस मामले में नौसेना प्रमुख की समीक्षा करने वाले अधिकारी की ओर से ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं दिखाई गई है। दोनों ने इस मामले में कई चरणों में अपना दृष्टिकोण रखा था।

83. नौसेना प्रमुख ने पूर्वी नौसेना कमान के फ्लैग ऑफिसर कमांडिंग-इन-चीफ के रूप में कार्य करते हुए अनाम शिकायत प्राप्त होने के बाद मामले के हर चरण पर विचार किया था। इस प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक है कि नौसेना प्रमुख द्वारा की गई न्यायिक समीक्षा वास्तव में निष्पक्ष थी या नहीं। प्रारंभिक परीक्षण-पूर्व चरणों में याचिकाकर्ता के अभियोजन में उनकी संलिप्तता को देखते हुए; याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों के संबंध में उनकी संतुष्टि को देखते हुए तथा सैन्य न्यायालय बुलाने का आदेश देने के कारण, उनके याचिकाकर्ता के प्रति पक्षपातपूर्ण होने की पूरी संभावना है। उन्होंने इस मामले में अपना दृष्टिकोण रखा था। यह उम्मीद करना उचित है कि वे इसका समर्थन करने में रुचि लेंगे। वे ही वह अधिकारी थे जिन्होंने अभियोक्ता और साथ ही विचारण न्यायिक अधिवक्ता की नियुक्ति के आदेश पारित किए थे। जब उन्हीं आदेशों की न्यायिक समीक्षा की मांग की जाती है तो ऐसे व्यक्ति से मानसिक स्वतंत्रता की उम्मीद करना निश्चित रूप से एक दूर की कौड़ी है। न्यायाधीश महाधिवक्ता की रिपोर्ट का निपटारा करने तथा मामले को केन्द्र सरकार को न भेजने के निर्णय में निष्पक्षता की कमी है। यह निर्णय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन था। यह याचिकाकर्ता को नौसेना अधिनियम की धारा 161 के तहत एक स्वतंत्र, निष्पक्ष और निष्पक्ष न्यायिक समीक्षा से इनकार करने के समान है।

84. हम ध्यान दे सकते हैं कि प्रत्यर्थी इनमें से किसी भी प्रस्तुति का विरोध नहीं कर सके। इस प्रकार, याचिकाकर्ता की शिकायत में योग्यता है कि उसे नौसेना अधिनियम की धारा 161 के तहत उसी की भावना, इरादे और उद्देश्य के संदर्भ में निष्पक्ष न्यायिक समीक्षा से वंचित कर दिया गया है।

याचिका में कहा गया है कि यह आरोप के समर्थन में 'कोई सबूत नहीं' का मामला था।

85. याचिकाकर्ता ने सशस्त्र बल न्यायाधिकरण के 8 दिसंबर, 2010 के फैसले को चुनौती दी है, जिसमें उसे आरोप संख्या 7 में दोषी पाया गया था, इस आधार पर कि आरोप का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं था। उसे अन्य सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया था, जिसके लिए सैन्य न्यायालय ने उसे दोषी पाया था।

86. इस प्रस्तुतिकरण की जांच करने से पहले, उन मानदंडों को निर्धारित करना आवश्यक है जिनके भीतर उच्च न्यायालय सैन्य न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा, जिस सीमा तक सशस्त्र बल न्यायाधिकरण द्वारा इसकी पुष्टि की गई है। इस संबंध में, हम *(1995) 6 एससीसी 749, बीसी चतुर्वेदी बनाम भारत संघ* में रिपोर्ट किए गए निर्णय में न्यायिक समीक्षा के दायरे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को उपयोगी रूप से निर्धारित कर सकते हैं, जिसमें अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही को चुनौती दी गई थी, भले ही अनुशासनात्मक

प्राधिकारी और सैन्य न्यायालय के समक्ष सबूत के बोझ की रूपरेखा अलग-अलग होगी क्योंकि सैन्य न्यायालय विशेष प्रक्रिया द्वारा दांडिक अपराध के लिए व्यक्ति की सुनवाई करता है, जो कि वर्तमान मामले में नौसेना अधिनियम के तहत प्रदान किया गया है और अभियोजन पक्ष को उचित संदेह से परे सबूत के दायित्व का निर्वहन करना होगा; जबकि अनुशासनात्मक कार्यवाही संभावनाओं के प्रबलता के सिद्धांतों पर इसके सामने पेश किए गए सबूत का परीक्षण करती है।

87. जहाँ तक भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायिक समीक्षा में साक्ष्य की सराहना का संबंध है, न्यायालय ने पैरा 12 में कहा कि निष्कर्ष कुछ साक्ष्यों पर आधारित होने चाहिए। न्यायालय की टिप्पणी इस प्रकार है:-

“12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय की अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति यह सुनिश्चित करने के लिए है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार प्राप्त हो और यह सुनिश्चित करने के लिए नहीं कि प्राधिकरण जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह न्यायालय की नजर में आवश्यक रूप से सही है। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोपों की जांच की जाती है, तो न्यायालय/अधिकरण यह निर्धारित करने के लिए संबंधित होता है कि क्या जांच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या क्या प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन किया जाता है। चाहे प्राप्तियां या निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित हों, जांच करने की शक्ति रखने वाले प्राधिकारी के पास तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने का अधिकार, शक्ति और अधिकार होता है। लेकिन वह निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित

होना चाहिए। न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण के नियम, जैसा कि इसमें परिभाषित किया गया है, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं। लेकिन यह निष्कर्ष कुछ सबूतों पर आधारित होना चाहिए। न तो साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण, जैसा कि उसमें परिभाषित किया गया है, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं। जब प्राधिकरण स्वीकार करता है कि साक्ष्य और निष्कर्ष से समर्थन प्राप्त होता है, अनुशासनात्मक प्राधिकरण को यह मानने का अधिकार है कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायालय/अधिकरण न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति में साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने और साक्ष्य पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/अधिकरण हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकरण ने अपचारी अधिकारी के खिलाफ कार्यवाही को प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ असंगत तरीके से या जांच के तरीके को निर्धारित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन में या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पहुँचा गया प्राप्ति या निष्कर्ष बिना किसी सबूत के आधारित है। यदि प्राप्ति या निष्कर्ष ऐसा है कि कोई भी उचित व्यक्ति कभी नहीं पहुँचा है, तो न्यायालय/अधिकरण निष्कर्ष या निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, और राहत को ढाला जा सकता है ताकि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के लिए उपयुक्त बनाया जा सके।

88. इसी मुद्दे पर **74 (1998) डी. एल. टी. 42 एस. एस. मेहता बनाम भारत संघ और अन्य** पर रिपोर्ट किए गए एक निर्णय में न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:-

“58. उच्चतम न्यायालय द्वारा कानून का प्रस्ताव स्पष्ट रूप से निर्धारित किया गया है कि न्यायालय यह पता लगाने के लिए रिपोर्टों की जांच कर सकता है कि क्या अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा प्राप्तियां या निष्कर्ष रिपोर्ट पर साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं। न्यायालय साक्ष्य का विश्लेषण कर सकता है, इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या निष्कर्ष रिपोर्ट पर साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं। न्यायालय/अधिकरण अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति के तहत साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने तथा साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। इस मामले में, मेरा स्पष्ट रूप से यह विचार है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आत्यन्तिक रूप कोई सबूत नहीं है और सैन्य न्यायालय का निर्णय किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है और इसे विकृत रूप में वर्णित किया जा सकता है।”

89. **1998 (1) एस. सी. सी. 537 भारत संघ बनाम मेजर ए. हुसैन** में पैरा 23 में दिए गए एक निर्णय में न्यायालय ने दोहराया कि सैन्य न्यायालय की कार्यवाही संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा के अधीन है। न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय को अन्य बातों के साथ-साथ आरोपी की दोषसिद्धि और सजा की वैधता को चुनौती देने की अनुमति नहीं देनी चाहिए, जब सबूत पर्याप्त हों।

90. प्रतिद्वंद्वी विवादों पर विचार करने से पहले, आरोप संख्या 7 को निर्धारित करना आवश्यक है जो इस प्रकार है:-

“(7) 30 दिसंबर 1988 को, भारतीय नौसेना के जहाज मगर के कमांडिंग ऑफिसर के रूप में अपनी क्षमता में, कुछ चल संपत्ति

का बेईमानी से दुरुपयोग करते हुए, भारतीय नौसेना के जहाज मगर के कमांडिंग ऑफिसर के नाम से रखे गए बचत बैंक खाते से अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए उनके द्वारा बुक किए गए फ्लैट के लिए वायु सेना नौसेना आवास बोर्ड, नई दिल्ली को भुगतान करने के लिए कुछ चल संपत्ति का दुरुपयोग किया, जिससे नौसेना अधिनियम 1957 की धारा 77 (2) के साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 403 के तहत दंडनीय अपराध किया गया।”

91. इस प्रकार यह आरोप नौसेना आवास बोर्ड को भुगतान के लिए याचिकाकर्ता की ओर से पचास हजार रुपये का मसौदा तैयार करने से संबंधित था।

92. याचिकाकर्ता का कहना है कि उसने बचत खाता संख्या सी.3081 से किसी भी राशि का दुरुपयोग किया है, जो आई.एन.एस. "मगर" के कमांडिंग ऑफिसर के नाम पर था। इस तर्क के समर्थन में, सैन्य न्यायालय के समक्ष दर्ज अभि.सा.-12 - श्री डी.के.दास, शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक की गवाही पर भरोसा किया गया है। विवाद के इस समर्थन में, सैन्य न्यायालय के समक्ष दर्ज अभि.सा.-12-श्री डी. के. दास, शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक की गवाही पर भरोसा रखा गया है। यह आग्रह किया जाता है कि भारतीय स्टेट बैंक में रखे गए दो बचत बैंक खातों और एक ही दिन में इन खातों पर समान राशि रुपये 20,000/-) के लिए दो चेक निकाले जाने के कारण भ्रम पैदा हुआ है। एक बचत बैंक खाता जो खाता सं.081 था, कमांडिंग अधिकारी, आई. एन. एस. मगर के नाम पर रखा गया था, जिसे याचिकाकर्ता और कर्मचारी अधिकारी

लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा द्वारा संयुक्त रूप से संचालित किया गया था। याचिकाकर्ता का उसी बैंक में बचत सं.7635 वाला एक अलग व्यक्तिगत खाता था।

93. जहाँ तक जहाज आई. एन. एस. मगर का संबंध है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स (जी. आर. एस. ई.), एक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, इसके निर्माण, सभी मरम्मत और आपूर्ति के लिए जिम्मेदार था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डी. जे. सिंह ने बताया है कि इस सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के प्रबंध निदेशक भारतीय नौसेना के एक सेवानिवृत्त एडमिरल थे।

94. 1988 में आईएनएस मगर पर कुछ मरम्मत और बदलाव कार्य किए गए थे, जिसकी निगरानी इस सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम द्वारा बारीकी से की गई थी। इसके अलावा, किए गए काम और सभी आपूर्तियों की देख-रेख कार्य पर्यवेक्षण दल (डब्ल्यू.ओ.टी.) द्वारा की गई थी, जिसे जहाज की मरम्मत के दौरान नियुक्त किया गया था। इसके अलावा, कार्य निरीक्षण दल (डब्ल्यू. ओ. टी.) द्वारा किए गए कार्य और सभी आपूर्ति की अनदेखी की गई, जिसे जहाजों के पुनर्निर्माण के दौरान नियुक्त किया गया था। कार्य निरीक्षण दल (डब्ल्यू. ओ. टी.) में नौसेना मुख्यालय के प्रतिनिधि शामिल थे। डब्ल्यू. ओ. टी. में नौसेना मुख्यालय के प्रतिनिधि, जहाज के एक प्रतिनिधि तथा मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स (जी आर ई) के एक प्रतिनिधि शामिल थे।

95. यह हमारे सामने एक स्वीकृत स्थिति है कि मरम्मत/बदलाव गतिविधियों के लिए प्राप्त कुल 3,43,104.80 वास्तव में जहाज के बचत बैंक खाते संख्या सी3081 में जमा किया गया था। इसके विपरीत, 30 दिसंबर, 1988 से पहले खाते से कुल 3,22,404 रुपये खर्च किए गए थे। इस प्रकार 30 दिसंबर, 1988 तक खाते में 20,700.80 रुपये की राशि शेष थी। यह भी निर्विवाद है कि जहाज उसके तुरंत बाद बदलाव की गतिविधियों के पूरा होने के बाद नौकायन कर रहा था।

96. इस राशि के व्यय के लिए याचिकाकर्ता के स्पष्टीकरण की जांच करने से पहले, ऊपर उल्लिखित आरोप पर याचिकाकर्ता के खिलाफ अभियोजन पक्ष के मामले की जांच करना आवश्यक है।

97. साक्ष्य के सारांश में, लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा का बयान 28 जनवरी, 1990 को दर्ज किया गया था। इस बयान में, लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा ने याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप संख्या 7 से संबंधित याचिकाकर्ता द्वारा किसी भी गलत काम का खुलासा नहीं किया। उन्हें सैन्य न्यायालय के समक्ष अभि.सा.-4 के रूप में लाया गया था, जिनका बयान 2 मार्च, 1991 को याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप का समर्थन करने के लिए दर्ज किया गया था, जब उन्होंने 28 जनवरी, 1990 के अपने बयान में भौतिक सुधार किए थे। इस गवाही में इस आधार पर हमला किया गया है कि यह अविश्वास के योग्य है, कि यह सबूत स्पष्ट रूप से मनगढ़ंत था और वह प्रशिक्षित गवाह था।

98. इस मुद्दे पर प्रासंगिक साक्ष्य भारतीय स्टेट बैंक के शाखा प्रबंधक श्री डी. के. दास का है, जो अभि.सा. 12 के रूप में उपस्थित हुए थे।

99. यह उल्लेखनीय है कि 1 नवम्बर, 1990 को सैन्य न्यायालय का आदेश दिए जाने से पूर्व साक्ष्यों का सारांश और प्रदर्शन, संयोजन प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे। इस तिथि पर, इस सामग्री में आरोप संख्या 7 का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं था। इस बात से अवगत अभियोजन पक्ष ने संयोजक प्राधिकरण द्वारा सैन्य न्यायालय का आदेश देने के बाद भी अतिरिक्त सबूत दर्ज किए। पक्षों ने साक्ष्य के सारांश के हिस्से के रूप में 8 नवंबर, 1990 को इस प्रकार दर्ज शाखा प्रबंधक श्री डी. के. दास का बयान हमारे सामने रखा है। इस बयान में, श्री दास ने रुपये 50,000/- के लिए बैंक ड्राफ्ट तैयार करने के बारे में कहा था, जो शुल्क का विषय था:

“(एन) हमने 30.12.88 को एयर फोर्स नेवल हाउसिंग बोर्ड के पक्ष में 50,000/- रुपये का ड्राफ्ट बनाया था। 20,000/- रुपये का भुगतान चेक संख्या 184159 द्वारा कमांडिंग ऑफिसर, आईएनएस मगर के खाते से किया गया था और शेष 30,000/- रुपये कमांडर अवतार सिंह द्वारा हस्ताक्षरित नकद भुगतान किया गया था (ड्राफ्ट संख्या 112759 30,000/- रुपये कमांडर अवतार सिंह के व्यक्तिगत खाता संख्या सी-7635 से 30.12.88 को निकाला गया था।)”

100. हमने ध्यान दिया to पाया कि उपरोक्त कथन शाखा प्रबंधक श्री दास द्वारा 23 जून, 1990 के पत्र के आधार पर दिया गया था, जिसमें इसका उल्लेख निम्नानुसार किया गया था:-

“XXX

XXX

XXX

13. रुपये के लिए एक चेक संख्या 184159, 20,000/- एफवीजी. 30.12.88 पर हमारे द्वारा स्वयं भुगतान किया गया।

14. हमारे द्वारा 30.12.88 को एयर फोर्स नेवल हाउसिंग बोर्ड के पक्ष में 50,000/- रुपये का ड्राफ्ट बनाया गया, 20,000/- रुपये चेक संख्या 184159 द्वारा भुगतान कमांडिंग ऑफिसर, आईएनएस मगर के खाते से किया गया और शेष 30,000/- रुपये नकद भुगतान किया गये, जिस पर कमांडर अवतार सिंह आईएनएस मगर खाता नेवी ऑफिसर हेस्टिंग्स, कलकत्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए (ड्राफ्ट संख्या 112739 रुपये 30,000/- कमांडर अवतार सिंह के व्यक्तिगत खाता संख्या सी-7635 से 30.12.88 को निकाले गए।)

XXX

XXX

XXX”

101. यह उल्लेखनीय है कि गवाह ने स्पष्ट रूप से रुपये, 30,000/- की नकद राशि और रुपये 20,000/- के चेक का उल्लेख किया जो रुपये 50,000/- का मसौदा बनाने में गया था। यह मसौदा याचिकाकर्ता की ओर से वायु सेना नौसेना आवास भवन बोर्ड को जमा किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस खाते से रुपये 20,000/- का चेक दिया गया था और जिस तिथि को रुपये 30,000/- की राशि निकाली गई थी, उसके संबंध में श्री दास के मन में कुछ भ्रम और भूल थी। अभि.सा.-12 के रूप में गवाही देते हुए, शाखा प्रबंधक

श्री डी.के. दास ने प्रश्न संख्या 1008 जिसे अभियोजक द्वारा रखा गया इसके जवाब में सैन्य न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया :-

“प्र. 1008 मैं यह प्रदर्शी पी-56 दिखा रहा हूँ कि इसका विवरण किस खाते से संबंधित हैं?

क. ये विवरण जो मैंने अग्रेषित किए हैं, वे हमारे बैंक के सी. ओ. आई. एन. एस. मगर के खाता सं-3081 के हैं। इस पत्र में हमने उस खाते में इसके खुलने के बाद से हुए अधिकांश लेनदेन का विवरण दिया है। मैंने क्रम संख्याएँ दी हैं और कुल मिलाकर 17 संख्याएँ यहाँ दी गई हैं। इसलिए इस खाते के बारे में पूछताछ प्राप्त होने के तुरंत बाद पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया था। इस न्यायालय में पेश होने से पहले मैंने एक बार फिर रिकॉर्ड देखे और अपने साथ रिकॉर्ड लाए, वहां मैंने देखा कि हमने 30 दिसंबर 88 को मद सं. 14 ए. एफ. एच. एन. बी. के पक्ष में रेड ड्राफ्ट रुपये 50,000/- और रु. 20,000/- का सी.ओ.आई.एन.एस. मगर के खाते से चेक सं.184189 द्वारा भुगतान किया गया और कमांडर अवतार सिंह द्वारा हस्ताक्षरित नकद में रुपये 30,000/- का भुगतान किया गया। मैं न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ कि इस जानकारी का कुछ हिस्सा सही नहीं था। हमने इसे एक सामान्य गलती के रूप में देखा है। 30 दिसंबर 88 को ए. एफ. एच. एन. बी. के पक्ष में एक मसौदा तैयार किया गया था, जिसमें इस हिस्से के कुछ हिस्से के लिए यह जानकारी सही थी। 20,000/- रुपये का भुगतान चेक द्वारा किया गया था, जो सही था। जबकि आपने जो चेक संख्या बताया है, वह सही नहीं है। सही चेक संख्या 184159 के बजाय 20,000/- रुपये के लिए 180854 है और संबंधित चेक कमांडर अवतार सिंह के स्टेट

बैंक खाता सं. सी 7635 पर था। यह चेक सी.ओ आईएनएस मगर के खाते में नहीं था। हालाँकि, संबंधित ड्राफ्ट की शेष राशि 30,000 रुपये नकद भुगतान की गई थी। यह सामान्य गलती इस तथ्य के कारण हुई कि कमांडर अवतार सिंह के व्यक्तिगत खाते के एसबीआई खाता संख्या सी 7635 से और सीओ आईएनएस मगर के खाता सी 3081 से भी 20,000 रुपये निकाले गए।”

(हमलोगों ने जोर दिया)

102. इसलिए भारतीय स्टेट बैंक के शाखा प्रबंधक ने बैंक द्वारा भेजे गए पत्र (प्रदर्शी पी-56) कथन में हुई गलती को स्पष्ट रूप से स्पष्ट किया है, जिसे साक्ष्य के सारांश में दर्ज किया गया था।

103. याचिकाकर्ता के बचत बैंक खाते सी 7635 के खाते का विवरण रिकॉर्ड में साबित हुआ था जिससे पता चलता है कि बैंक ड्राफ्ट तैयार करने से कुछ समय पहले याचिकाकर्ता द्वारा सी.50,000/- की राशि निकाली गई थी। इस प्रकार अभियोजन पक्ष ने हाथ में इस नकद राशि की उपलब्धता को स्पष्ट रूप से स्थापित किया था।

104. अभि.सा.-12 श्री डी. के. दास, शाखा प्रबंधक ने न्यायालय के समक्ष बयान दिया था कि बैंक ने चेक संख्या बताते हुए गलती की थी। जबकि, वास्तव में, ड्राफ्ट बनाने के लिए याचिकाकर्ता के खाते से चेक संख्या 180854 का उपयोग किया गया था। गवाह बार-बार शेष राशि 30,000/- रुपये नकद

प्राप्त होने का उल्लेख करता है। इस संबंध में अभि.सा.12 श्री डी.के. दास के बयान से निम्नलिखित उद्धरण प्रासंगिक है:

“प्र. 1028 इस मसौदे 112759 के लिए नकद में कितना पैसा था और चेक या चेक के रूप में कितना था?

उ. रु. 30,000/- नकद में जमा किया गया था और रु. 20,000/- का भुगतान चेक के माध्यम से किया गया था।

प्र. 1029 20,000/- रुपये का यह चेक किस खाते से था और चेक सं. भी दिया गया था?

उ. इसके प्रत्यक्ष रूप से मैं यह नहीं कह सकता कि वह चेक संख्या और खाता क्या है जिससे इसका भुगतान किया जाता है। जब द्वारा मुझे अभिलेखों को देखना पड़ा है, मैंने देखा है कि रुपये की एक निकासी है। 20,000/- कमांडर अवतार सिंह के व्यक्तिगत खाते में सं.7635 चेक संख्या 18054 है। वहाँ इसे चेक (ड्राफ्ट) के लिए भी लिखा जाता है। मैं प्रस्तुत कर सकता हूँ, उसी तिथि को रुपये की एक और निकासी हुई थी। आई. एन. एस. मगर खाते से भी 20,000/-। जिससे पी 56 में तथ्य देने में हुई गलती के लिए भ्रम पैदा करने में हुई गलती के लिए भ्रम पैदा हुआ।”

105. न्यायालय द्वारा इन पहलुओं पर सवाल इस गवाह के सामने भी रखे गए थे, जिन्हें इस प्रकार भी रखा जा सकता है और पढ़ा जा सकता है:-

प्र. 1044 श्री दास, मेरा अनुभव है कि जब ग्राहक बैंकर को आम तौर पर नकद में राशि प्रदान करता है या चेक आदि का विवरण चेक करता है तो बैंक ड्राफ्ट पर्ची पर लिखा जाता है। इस विशेष मामले में कमांडर अवतार सिंह ने रुपये 50,000/- की राशि के लिए बैंक ड्राफ्ट या एफएचएनबी के लिए अनुरोध किया था। क्या

आप अपने रिकॉर्ड से देख सकते हैं और हमें डीडी पर्ची पर अधिक जानकारी दे सकते हैं?

उ. वास्तव में डीडी अनुरोध पर्ची पर जो कमांडर अवतार सिंह ने हमें जमा की थी, केवल रुपये 30,000/- नकद का उल्लेख किया गया है और संबंधित अधिकारी और रुपये 20,000/- चेक द्वारा विधिवत प्रमाणित किया गया है। चेक के विवरण का उल्लेख नहीं किया गया है।

“प्र. 1049 यह गलती कैसे हुई कि आपने गलत बैंक खाता संख्या बताई। आपको बाद में दूसरे खाता संख्या को देखने और यह कहने कि गलती से ऐसा हुआ है, क्या ज़रूरत थी?

उ. दरअसल जब जांच अधिकारी आए और उन्होंने इन वाउचर और विवरणों के बारे में पूछा तो हमने इसे बाहर निकाला और सीओ मगर के ड्राफ्ट के खाते की जांच की तो पता चला कि 20,000 रुपये का चेक से भुगतान किया गया था और बाकी का भुगतान नकद में किया गया था। मैं सीओ मगर के खाते में 20,000 रुपये का डेबिट देख रहा था जो ड्राफ्ट जारी करने के लिए जमा किए गए चेक की राशि के समान था। मुझे लगा कि यह वही निकासी है। लेकिन समन मिलने के बाद जब मुझे रिकॉर्ड की प्रमाणित प्रतियां पेश करने की आवश्यकता हुई तो मुझे सभी रिकॉर्ड की सावधानीपूर्वक जांच करनी पड़ी और उस समय केवल कमांडर अवतार सिंह के व्यक्तिगत खाते से ड्राफ्ट जारी करने के लिए निकासी की बात ही मेरे ध्यान में आई।

106. उपरोक्त गवाही इस बात पर स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत खाते से 20,000/- रुपये का चेक ड्राफ्ट तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया गया था और शेष तीस हजार रुपये की राशि नकद थी। इस गवाह को यह दिखाने के लिए बार-बार मनाने के प्रयासों के बावजूद कि 30 दिसंबर, 1990

को जहाज के बचत बैंक खाता संख्या सी 3081 से चेक संख्या 184159 द्वारा निकाली गई नकद राशि का उपयोग ड्राफ्ट तैयार करने के लिए किया गया था, गवाह ने ऐसा नहीं कहा।

107. यह स्पष्ट है कि कुल राशि रुपये 30,000/- नकद द्वारा बैंक को दी गई थी और याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत खाते से दिए गए रु. 20,000/- रुपये का उपयोग बैंक ड्राफ्ट तैयार करने के लिए किया गया था।

108. हमारे सामने रखे गए अभिलेख से पता चलता है कि लंबे समय तक स्थगन के बाद, प्रत्यर्थियों ने तत्कालीन लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा को अभि.सा.-4 के रूप में गवाह के रूप में पेश किया। अपने बयान में, इस गवाह ने इस हद तक कहा कि उसने याचिकाकर्ता के कहने पर कई दस्तावेजों पर धोखाधड़ी से हस्ताक्षर किए थे जो जहाज के कमांडिंग ऑफिसर थे। गवाह पर सभी मामलों में अविश्वास किया गया है। सैन्य न्यायालय ने बीस आरोपों के समर्थन में उनकी गवाही को भी खारिज कर दिया, जिस पर याचिकाकर्ता को सात आरोपों का दोषी ठहराते हुए बरी कर दिया गया था। सशस्त्र बल अधिकरण ने लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा की गवाही को और छह आरोपों (जिसके लिए उन्हें सैन्य न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया था) पर अविश्वास किया।

109. हमसे पहले, प्रत्यर्थियों ने प्रतिग्रहण करना किया कि लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा ने आरोप संख्या 7 पर सबूत का एक शब्द भी नहीं कहा था। 27 जून, 1990 को साक्ष्य के सारांश में उनके द्वारा दिए गए बयान में। हालाँकि, 2

मार्च, 1991 को अभि.सा.-4 के रूप में सैन्य न्यायालय में पेश होते हुए, इस गवाह ने पहली बार दावा किया कि याचिकाकर्ता ने उसे केवल रुपये 10,000/- नकद राशि दी थी, जबकि 30 दिसंबर, 1988 को जहाज के खाते से रु. 20,000/- रुपये निकाले गए और इसका उपयोग वायु सेना नौसेना आवास बोर्ड को भुगतान के लिए रु.50,000/- का बैंक ड्राफ्ट तैयार करने के लिए किया गया, जो शुल्क का विषय था।

110. प्रत्यर्थियों की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री ज्योति सिंह ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता की ओर से लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा से उनकी गवाही के संबंध में जिरह नहीं की गई थी। हम यह देखने में विफल हैं कि यह प्रत्यर्थियों को उचित संदेह से परे आरोप के प्रमाण के बोझ के अभियोजन को कैसे दोषमुक्त करेगा।

111. इस गवाह की गवाही का अवलोकन करने से पता चलता है कि अभियोजन पक्ष मामले से जुड़े प्रमुख सवालों के जवाबों पर निर्भर था, जिनका उसने सिर्फ सकारात्मक जवाब दिया था।

112. **ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 1012 तहसीलदार सिंह और एक अन्य बनाम यू.पी. राज्य** पर भरोसा रखते हुए, यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि अभि.सा.-4 ने आरोप पर कोई पिछला बयान नहीं दिया था, इसलिए याचिकाकर्ता के पास उसका सामना करने का कोई अवसर नहीं था।

113. इस पहलू पर, हम ध्यान दे सकते हैं कि सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत इस कथन पर गौर किया है कि उसने अपनी मां से 50,000 रुपये की राशि की व्यवस्था की थी, जिसे उसके उपरोक्त बचत खाता संख्या सी-7635 में जमा किया गया था। हम पाते हैं कि यह जमा याचिकाकर्ता के बचत बैंक खाते के विवरण में विधिवत परिलक्षित होता है जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा सैन्य न्यायालय के रिकॉर्ड पर प्र.सी.06 के रूप में साबित किया गया है। याचिकाकर्ता ने वास्तव में कलकत्ता से जहाज के रवाना होने की पूर्व संध्या पर अपने निजी खाते से 50,000/- रुपये की राशि निजी उपयोग के लिए निकाली थी। हमारा ध्यान प्र.सी-96 की ओर आकर्षित किया जाता है - जो कि बचत खाता संख्या सी-7635 (पृष्ठ 233) का बैंक विवरण है। इसमें 50,000/- रुपये की जमा राशि और 50,000/- रुपये की निकासी (30 दिसंबर, 1988 को 20,000/- रुपये के चेक लेनदेन से ठीक पहले) दर्शाई गई है इस प्रकार यह दस्तावेज स्थापित करता है कि याचिकाकर्ता के पास बड़ी राशि उपलब्ध थी और वह 30,000/- रुपये नकद और 50,000/- रुपये के उक्त बैंक ड्राफ्ट की तैयारी के लिए 30 दिसंबर, 1988 की तिथि वाले 20,000/- रुपये के चेक का भुगतान करने में सक्षम था। स्वतंत्र गवाह अभि.सा.12 श्री डी.के. दास के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से इस स्थिति का समर्थन होता है, जिन्होंने 30,000/- रुपये की नकद राशि का उल्लेख किया है।

114. इस मामले में एक और महत्वपूर्ण परिस्थिति को नजरअंदाज कर दिया गया है। इस मामले में एक और महत्वपूर्ण परिस्थिति को नजरअंदाज किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिंह ने हमारा ध्यान कई दस्तावेजों की ओर आकर्षित किया है जो उन आरोपों का विषय थे जिनके आधार पर याचिकाकर्ता पर सैन्य न्यायालय में मुकदमा चलाया गया था, जिस पर अभि.सा. 4 - लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा हस्ताक्षरकर्ता थे। अभि.सा. 4 - लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा का मुख्य साक्ष्य यह था कि उन्होंने याचिकाकर्ता के कहने पर फर्जी बिलों और दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए थे।

इसलिए उनकी गवाही सह-अपराधी साक्ष्य की प्रकृति की होगी।

115. यह एक स्वीकृत स्थिति है कि जहां तक आरोप संख्या 7 का संबंध है, अभि.सा.4 लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा की एकमात्र गवाही के अलावा इसका समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है। किसी व्यक्ति के खिलाफ दांडिक अपराध के लिए अपराध का निष्कर्ष घर लाने के लिए एक सहयोगी गवाह की अपुष्ट गवाही का उपयोग करना असुरक्षित और कानूनी रूप से प्रभावशाली होगा। इस कारण से भी, अभि.सा.-4 की अपुष्ट गवाही पर आधारित याचिकाकर्ता के अपराध का निष्कर्ष टिकाऊ नहीं है।

116. प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने दलील दी है कि अभि.सा. 4 - लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा याचिकाकर्ता के दाहिने हाथ के आदमी थे और उन्हें स्टाफ अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान

अधिवक्ता ने दलील दी है कि जहां तक इस अधिकारी का सवाल है, तो अनुशासन संबंधी मुद्दे थे और याचिकाकर्ता ने अधिकारी को अपना काम ठीक से करने में सक्षम बनाने के लिए उन्हें जिम्मेदारी दी थी।

117. हम पाते हैं कि सैन्य न्यायालय में अभियोजन पक्ष का मामला कभी ऐसा नहीं था और याचिकाकर्ता को यह बताने का कोई मौका नहीं मिला कि जहाज पर अभि.सा. 4 - लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा की स्थिति क्या थी। किसी भी मामले में, यह वर्तमान मामले के उद्देश्य के लिए अप्रासंगिक है। अभि.सा.4 - लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा की गवाही एक विलम्बित विचार है और वाद शुरू होने के काफी समय बाद गढ़ी गई है। ए. के. आहूजा के बारे में देर से सोचा जाता है और वाद शुरू होने के काफी समय बाद इसे गढ़ा जाता है। जहाँ तक इस गवाही का संबंध है, याचिकाकर्ता आश्चर्यचकित था। याचिकाकर्ता को विचारण के दौरान 27 आरोपों का भी सामना करना पड़ा, जिसमें संक्षिप्त लेखा विवरण, याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए विशाल दस्तावेज और बड़ी संख्या में गवाहों के साक्ष्य शामिल थे। जहां तक इस गवाही का सवाल है, याचिकाकर्ता को आश्चर्य हुआ। याचिकाकर्ता पर विचारण के दौरान 27 आरोप भी लगाए गए, जिनमें सूक्ष्म लेखा विवरण, याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए भारी मात्रा में दस्तावेज और बड़ी संख्या में गवाहों के साक्ष्य शामिल थे। लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा एक प्रशिक्षित गवाह थे जो निर्भरता के योग्य नहीं थे। यह अभि.सा. 12 की गवाही है, एक स्वतंत्र गवाह को स्वीकार किया जाना चाहिए।

118. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री डी. जे. सिंह ने इस महत्वपूर्ण परिस्थिति को सामने लाया है कि अभि.सा.4-लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा निश्चित रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रतिशोध ले रहे थे। जिरह के दौरान, अभि.सा. 4 लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा ने एक अवसर के संबंध में साक्ष्य दिया जब याचिकाकर्ता ने जहाज पर उनके साथ हाथापाई की थी। अभि.सा.4 लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा ने आगे कहा है कि याचिकाकर्ता द्वारा उनके साथ किए गए व्यवहार से वह अपमानित महसूस कर रहे थे।

यह बताया गया है कि अभि.सा.4 बहुत ज़्यादा शराब पीता था। अभि.सा. 11-लेफ्टिनेंट (एसडीजी) डॉ. जी.एस. देओल ने भी इस तथ्य के बारे में गवाही दी है कि अभि.सा. 4-लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा को बार खुलने से लेकर बंद होने तक बहुत ज़्यादा शराब पीने की आदत थी। प्रश्न संख्या 2225 और 2259 के उत्तर में अभि.सा.-30 कमांडर जॉर्ज ने भी अभि.सा. 4-लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा की शराब की लत के बारे में गवाही दी है। अधिकरण के समक्ष याचिकाकर्ता ने प्रश्न संख्या क्यू/ए 4349 में अभि.सा.-53 की गवाही को भी उजागर किया था कि उसके अपने बैच के साथी लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा से दूर रहते थे क्योंकि उन्हें लगता था कि वह व्यवहार के लिए सही व्यक्ति नहीं है।

119. अभि.सा.4 की आदतों के बारे में यह तथ्यात्मक स्थिति; याचिकाकर्ता और उसके बीच का प्रकरण; साथ ही कथित अपराधों में उसकी संलिप्तता

/भागीदारी; निश्चित रूप से उसे याचिकाकर्ता के खिलाफ गवाही देने के लिए प्रेरित किया।

120. **2003 (11) एस.सी.सी. 19 खलील खान बनाम एम.पी. राज्य** में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है। इस मामले में, न्यायालय पुलिस को दिए गए बयान की तुलना में न्यायालय में अभि.सा.- 1, 2, 5 और 8 द्वारा दिए गए बयान में भौतिक सुधार से संबंधित थी। इस पहलू पर, सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार फैसला सुनाया है:-

“6. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है तथा ऊपर उल्लेखित अभिलेखों का अवलोकन किया है। अभियोजन पक्ष का मामला मुख्य रूप से इस तथ्य पर आधारित है कि मृतक ने मृत्यु पूर्व बयान दिया था। यह तथ्य इसलिए महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि घटना का कोई चश्मदीद गवाह नहीं था। अभि.सा. 1,2,5 और 8 के साक्ष्य में अन्य सभी विसंगतियों के अलावा, हम देखते हैं कि यह महत्वपूर्ण तथ्य, अर्थात्, कि मृतक ने अपीलकर्ता को हमलावर के रूप में शामिल करने वाला बयान दिया था, जांच अधिकारी को तब नहीं बताया गया था जब उनके बयान पहली बार दर्ज किए गए थे और न्यायालय के सामने पहली बार उनके द्वारा यह तथ्य कहने से उक्त तथ्य की सत्यता पर कुछ संदेह पैदा होता है। चोटों की प्रकृति और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक को अस्पताल ले जाते समय वह बेहोश हो गया था, हम समझते हैं कि इन गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं है, जिन्होंने न्यायालय के समक्ष पहली बार मृत्युपूर्व बयान के रूप में यह महत्वपूर्ण बयान दिया है। ऐसा कहते हुए, हमने इस

तथ्य को ध्यान में रखा है कि ये सभी गवाह मृतक के बहुत करीबी रिश्तेदार हैं।”

121. इस पहलू पर, **ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 4148 रुद्रप्पा रामप्पा जैनपुर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** में रिपोर्ट की गई उच्चतम न्यायालय की एक और घोषणा का संदर्भ दिया गया है, जिसमें इसी तरह के मुद्दे पर न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:- (पैरा 13 &14)

“13.जहां तक अन्य आरोपियों का सवाल है, सबूत सुसंगत नहीं हैं। अभि.सा.-2, मुखबिर ने अपने बयान के दौरान आरोप लगाया कि ए-6 और ए-7 ने भी मृतक पर क्रमशः कुल्हाड़ी के लकड़ी के हैंडल और साइकिल की चेन से हमला किया था। हालांकि, मुखबिर ने अपनी प्राथमिकी में ऐसा नहीं कहा और इसलिए, मृतक पर ए-6 और ए-7 द्वारा हमला करने के खिलाफ न्यायालय में उसके सबूत विचारण न्यायालय द्वारा स्वीकार्य नहीं पाए गए।

14. अभि.सा.-6 ने जोर देकर कहा कि ए-4, ए-5 और ए-7 ने भी मृतक पर हमला किया था, लेकिन यह पाया गया कि उसने धारा 161 दं.प्र.सं. के तहत दर्ज अपने बयान में जांच के दौरान ऐसा नहीं कहा था। इसलिए, विचारण न्यायालय ने अभि.सा.-6 के साक्ष्य के इस हिस्से को स्वीकार नहीं किया, अभि.सा.-4 ने कहा कि ए-1 और ए-2 के अलावा 5 अन्य आरोपियों ने मृतक पर हमला किया और इस संबंध में उसने ए-3, ए-4, ए-6, ए-7 और ए-8 को शामिल किया। किसी अन्य गवाह ने ऐसा नहीं कहा था और इसलिए, विचारण न्यायालय ने उसके साक्ष्य के इस हिस्से को स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर, अभि.सा. 3, 5 और 8 ने गवाही दी कि केवल ए-1 और ए-2 ने ही मृतक पर हमला किया था। रिकॉर्ड पर मौजूद ऐसे साक्ष्यों के आधार पर, हमें

विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष में कोई गलती नहीं दिखती कि केवल ए-1 और ए-2 ने ही मृतक पर हमला किया था और किसी अन्य आरोपी ने उस पर हमला नहीं किया था।”

122. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया कि याचिकाकर्ता का आचरण पूरी तरह से ईमानदार था और सभी लेन-देन पारदर्शी थे। यह आग्रह किया जाता है कि जहाज के लिए प्राप्त सभी राशियों का उचित हिसाब-किताब रखा गया हो। याचिकाकर्ता ने यह भी बताया है कि 30 दिसंबर, 1988 को जहाज के खाते से निकाली गई 20,000 रुपये की राशि को किस प्रकार हड़प लिया गया। यह आग्रह किया गया है कि जहाज के पुनर्निर्माण के दौरान, कैप्टन के लिए एक एडमिरल डेक चेयर और एक झुकने वाली कुर्सी खरीदने का प्रस्ताव रखा गया था। इस प्रस्ताव को गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स की मंजूरी मिली थी और उनकी सहमति से इन कुर्सियों की आपूर्ति मेसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट द्वारा की गई थी।

123. इन कुर्सियों के लिए भुगतान किया जाना था, इससे पहले कि उन्हें आपूर्ति की जा सके। बिलों को संसाधित करना एक समय लेने वाली प्रक्रिया थी। जहाजों पर प्रचलित एक प्रथा के अनुसार, राशि कैंटीन निधि (गैर-सार्वजनिक निधि) से एक अस्थायी रसीद के बदले ली जाती थी जिसे संसाधित करने के बाद भुगतान प्राप्त होने पर कैंटीन निधि में प्रतिपूर्ति की जाती थी।

124. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने इस प्रथा के अस्तित्व के संबंध में याचिकाकर्ता का समर्थन किया है।

हमारा ध्यान प्रश्न संख्या 896 की ओर आकृष्ट किया गया है, जो अभि.सा.11 - लेफ्टिनेंट कमांडर (विशेष ड्यूटी गनर) डॉ. जी.एस. देओल से उनकी जिरह में पूछा गया था। प्रश्न और गवाह के उत्तर पर विस्तार से विचार किया जाना चाहिए और यह इस प्रकार है:-

“प्र. 896 में बोर्ड जहाजों पर एक बहुत ही सामान्य प्रथा की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। अर्थात् यदि मैं जल्दबाजी में कुछ खरीदना चाहता हूं और किसी विशेष कोष में पैसा उपलब्ध नहीं है तो हम एक निजी कोष से कुछ पैसे लेते हैं। वस्तु को प्राप्त करें और खरीदें। इसके बाद जब हमें किसी स्रोत से पैसा मिलता है तो हम पैसे वापस कर देते हैं और शीट को फाड़ देते हैं। क्या ‘मगर’ में यह प्रथा प्रचलित थी?

(गवाह ने न्यायालय से सुरक्षा मांगी जो उसे दी गई थी)।
उ. हाँ, श्रीमान।”

125. इस प्रकार यह प्रमाण था कि हालांकि अनियमित, लेकिन जहाज पर, यदि खरीद को प्रभावित करने के लिए आवश्यक धन किसी विशेष निधि में उपलब्ध नहीं था, तो इसे अस्थायी रूप से एक गैर-सार्वजनिक व्यक्ति से लिया गया था। उचित मद के अंतर्गत भुगतान प्राप्त होने पर यह राशि गैर-सार्वजनिक निधि में वापस कर दी जाती है। इस रिट याचिका में, हम इस प्रथा की वैधता या औचित्य से चिंतित नहीं हैं। हालाँकि, तथापि, अभि.सा. 11 के बयान से यह स्थापित हुआ कि ऐसी प्रथा न केवल आईएनएस मगर पर बल्कि सभी जहाजों पर प्रचलित थी।

126. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मेसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट द्वारा 8 अक्टूबर, 1988 को एक घूमने वाली/झुकने वाली कुर्सी के लिए 6,720/- रुपए की राशि के बिल 31 अक्टूबर, 1988 को मेसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड को प्रस्तुत किए गए थे, जिन्होंने जहाज के कमांडिंग ऑफिसर (याचिकाकर्ता) को उचित जांच के बाद 23 नवंबर, 1988 को राशि जारी की थी।

127. मैसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट का 11 अक्टूबर, 1988 का बिल 7,000 रुपये की राशि के लिए मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड को 23 अक्टूबर, 1988 को प्रस्तुत किया गया था, जिसने एक स्पष्ट जांच के बाद 23 नवंबर, 1988 को फिर से राशि जारी की।

128. हमारा ध्यान आई.एन.एस. मगर के दिनांक 18 नवम्बर, 1988 के संचार की ओर भी आकर्षित किया गया है, जिसमें दो कुर्सियों के संबंध में 6,720/- तथा 7,000/- रुपए की राशि के दिनांक 8 अक्टूबर, 1988 तथा 11 अक्टूबर, 1988 के पूर्वोक्त बिल शामिल थे।

इस पत्र में उल्लिखित कई बिलों की राशि की प्रतिपूर्ति के लिए अनुरोध किया गया था, जिनकी कुल राशि 1,89,350.00 रुपये थी। इन बिलों में कुर्सियों के बिल भी शामिल थे।

129. जहाज खाते के एस.बी. खाता संख्या सी 3081 के विवरण के अनुसार, 1,89,350/- रुपए की यह राशि 29 नवंबर, 1988 को ही जमा की गई थी।

130. यह स्थापित करने के लिए कि ये दोनों कुर्सियाँ वास्तव में जहाज पर ही प्राप्त हुई थीं, आईएनएस मगर, अभि.सा. 11- लेफ्टिनेंट सीडीआर (एसडीजी) डॉ. जीएस देओल ने प्रश्न संख्या 900, 901 और 902 के अपने उत्तरों में; अभि.सा. 9-लेफ्टिनेंट डी. बाली प्रश्न/उत्तर 543, 544 (पृष्ठ 202) और अभि.सा. 4-लेफ्टिनेंट ए.के. आहूजा (प्रश्न संख्या प्रश्न/उत्तर 900,901,902 (पृष्ठ 267) और प्रश्न/उत्तर 4976 (पृष्ठ 1016) इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि ये कुर्सियाँ वास्तव में जहाज पर ही आई थीं।

131. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया है कि मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड द्वारा जहाज पर किया जा रहा कार्य निरीक्षण दल (डब्ल्यू. ओ. टी.) की कड़ी जांच के दायरे में था जिसमें जी.आर.एस.ई. के अधिकारी, जहाज के अधिकारी और एक डब्ल्यू. ओ. टी./सी. जी. निरीक्षक/मालिक का प्रतिनिधि (यानी नौसेना मुख्यालय से) शामिल थे। यह बताया गया है कि डब्ल्यू.ओ.टी. नियमित रूप से पूरा किए जा रहे काम का निरीक्षण कर रहा था और उनके हस्ताक्षर के तहत रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इन रिपोर्टों पर प्रत्यर्थी ने सैन्य न्यायालय से पहले भी भरोसा किया है।

132. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री डी.जे. सिंह ने आगे बताया कि विभिन्न मर्दों का उल्लेख करते समय लेखांकन को सक्षम बनाने के लिए

प्रत्यर्थियों ने नामकरण के लिए अंग्रेजी के वर्णमाला को अपनाया। उदाहरण के लिए इंजीनियरिंग वस्तुओं के लिए, वर्णमाला 'ई' का उपयोग किया गया था; पतवार फिटिंग और फिक्सचर के लिए; अंग्रेजी वर्णमाला 'एच' का उपयोग किया जाता है (इसमें संबंधित कुर्सियाँ शामिल होंगी) और विद्युत वस्तुओं के संदर्भ में वर्णमाला 'एल' का उपयोग किया जाता है। प्रत्यर्थियों ने सैन्य न्यायालय के समक्ष 4 नवंबर, 1988 की कार्य की पूर्णता रिपोर्ट को प्र.पी.-42 के रूप में रिकॉर्ड के तौर पर रखा और साबित किया। यह रिपोर्ट तीन सदस्यों (जिसमें जीआरएसई अधिकारी; जहाज का अधिकारी और डब्ल्यूओटी/सीजी इंस्पेक्टर/मालिक का प्रतिनिधि यानी नौसेना मुख्यालय का एक अधिकारी शामिल हैं) द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित है और हमारे समक्ष प्रस्तुत की गई है। हम पाते हैं कि इस कार्य पूर्णता रिपोर्ट के क्रमांक 1126 में निम्नलिखित प्रविष्टि की गई है:- ई, नौसेना मुख्यालय के एक अधिकारी) को हमारे सामने रखा गया है। हम पाते हैं कि इस कार्य को पूरा करने की रिपोर्ट के क्रम सं.1126 में निम्नलिखित प्रविष्टि की गई है:-

“1126. एच.एमओडी31. एक नो एडमिरल्स चेयर हाई बैक/टिल्टिंग चेयर पूरी तरह से असबाबवाला, बिल नंबर 10/एएंडके/88-89 दिनांक 11.10.88 के अनुसार खरीदा और आपूर्ति किया गया, जहाज को दिया गया। वेयर हाउस में सूट करने के लिए डेस्क पर कुर्सी बनाए रखने की व्यवस्था वेल्डेड की गई। काम संतोषजनक पाया गया।”

133. इसके अलावा क्रमांक 1155 (पृष्ठ 229) पर निम्नलिखित प्रविष्टि है:-

“1155. एच. एमओडी 54. एक कैप्टन की कुर्सी, घूमने वाली/झुकने वाली कुर्सी, जो ओपीएस रूम के लिए पूरी तरह से असबाबवाला है, जहाज को सौंपी गई। रिटेनिंग सॉकेट को नंबर 10 पर डेक पर वेल्डेड किया गया। काम संतोषजनक पाया गया। बिल सं. 5 (ए एंड के) 88-89 दिनांक 8-(अस्पष्ट)।”

सैन्य न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष द्वारा इस दस्तावेज़ पर भरोसा किया गया था। यह दस्तावेज़ हस्तलिखित है और इसमें तीन स्वतंत्र अधिकारियों के हस्ताक्षर हैं, जिन्हें कार्य पर्यवेक्षण दल का गठन किया गया था और जिन्होंने कार्य समापन रिपोर्ट दर्ज की थी। प्रत्यर्थी इस दस्तावेज़ की सत्यता पर सवाल नहीं उठाते हैं।

134. यह उल्लेखनीय है कि जहां तक कार्य समापन रिपोर्ट की सत्यता या प्रामाणिकता का प्रश्न है, इसमें कोई विवाद नहीं है, जो यह स्थापित करती है कि दोनों कुर्सियां विधिवत आपूर्ति की गई थीं तथा जहाज पर स्थापित की गई थीं।

पूर्व नोटिस किए गए दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, हमारे सामने प्रत्यर्थियों का यह निवेदन कि कुर्सियां कभी भी जहाज पर नहीं आईं; को अस्वीकार करना होगा।

135. 8 अक्टूबर, 1988 (प्र.पी-36) के बिलों की प्रति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें लिखावट में 'एच 54' है। 11 अक्टूबर, 1988 (प्र.पी 37) के बिल में भी इसी तरह हस्तलेखन में एच 35 है। प्राधिकरण द्वारा बिलों को संसाधित करते समय एच-54 और एच-31 का उल्लेख किया गया है, जाहिर है कि उचित जांच के बाद।

136. हम 18 नवंबर, 1988 के संचार में यह भी पाते हैं कि कार्य समाप्ति रिपोर्ट का संदर्भ दिया गया है, जिस पर डब्ल्यूओटी और जहाज के अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जिसमें फिर से 'एच-54' और 'एच-31' का संदर्भ दिया गया है।

इसमें यह उल्लेख किया गया है कि ये दोनों उन वस्तुओं में से हैं जिन्हें जहाज द्वारा लाया गया था और जिसके लिए भुगतान की मांग की गई थी।

137. जहाज से वित्त अनुभाग को 28 नवंबर, 1988 को भेजे गए पत्र में कुर्सियों के बिलों सहित कुल 1,89,350.00 रुपए के कई बिलों की राशि मांगी गई है। इस पत्र में 'प्रतिपूर्ति' का उल्लेख है, जिससे पता चलता है कि भुगतान किया गया है।

138. सुश्री ज्योति सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने मैसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट द्वारा 25 जून, 1990 को जारी की गई एक रसीद का उल्लेख किया है, जिसमें 8 दिसंबर, 1988 को एक चेक द्वारा तीन बिलों के लिए रु. 1,01,050/-

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता तर्क देंगे कि तीन बिलों में अध्यक्षों के लिए बिल भी शामिल थे। दूसरी ओर, यह प्रत्यर्थी के लिए श्री डी.जे. सिंह द्वारा इंगित किया गया है कि इस रसीद में संदर्भित तीन बिलों का उल्लेख रुपये 45,000/- की राशि के रूप में किया गया था; रुपये 17,230.00 और 6,720.00 रुपये, अपने कुल को रुपये.68,950.00 पर लाते हैं। इसलिए, रुपये 1,01,050/- की रसीद उल्लिखित बिलों के लिए नहीं है।

139. यह बताया गया है कि गार्डन रीच शिप बिल्डर्स मरम्मत और आपूर्ति करने के लिए मेसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट का उपयोग कर रहा था। याचिकाकर्ता ने मरम्मत के लिए अधिकारियों से जहाज द्वारा प्राप्त राशि को दर्शाते हुए लेखा विवरण प्रस्तुत किया है; साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा विभिन्न कार्यों और मदों के बिलों के लिए निकासी और संवितरण भी। यह लेखा विवरण निम्नलिखित को दर्शाता है:-

- (i) 30 दिसंबर, 1988 तक खाता संख्या सी 3081 में प्राप्त कुल राशि 3,43,104.80 रुपये थी।
- (ii) इसमें से निकाली गई कुल राशि 3,43,004.80 रुपये थी।
- (iii) मेसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स (जी. आर. एस. ई.) से प्राप्त राशि
- (iv) जहाज का खाता जहाज के कैटीन खाते से 100 रुपये निकालकर खोला गया।

(v) मैसर्स आर्ट एंड क्राफ्ट को भुगतान की गई कुल राशि वार्ड रूम और सी. ओ. के केबिन का नवीनीकरण करना था रुपये की धुन. 3,01,050/- यह इस से प्रकट होता है अभिलेख पर उपलब्ध बिल और रसीद।

(vi) शेष 42,054.80 रुपये की राशि का उपयोग निम्नलिखित खर्चों को पूरा करने के लिए किया गया:-

1.	जहाज के कैंटीन खाते में वापसी	रुपये 100/-
2.	मुर्गों की खरीद	रुपये 4900/-
3.	वार्डरूम और सीओ के केबिन के लिए प्रकाश स्थावर और शेड	रुपये 6354/-
4.	जहाज कल्याण कोष	रुपये 10,000/-
	कुल	रुपये 21354/-

(vii) इसके बाद बचत बैंक खाते में केवल 20,700.80 रुपए शेष बचे।

30 दिसंबर, 1988 को बचत खाता संख्या सी3081 से 20,000 रुपए नकद निकाले गए, जिसका उपयोग गोदरेज एग्जीक्यूटिव कुर्सियों और वार्डरूम के लिए लकड़ी की बीडिंग और जहाज के स्पीकर के लिए लकड़ी के बक्सों के भुगतान के लिए किया गया।

(viii) रिकॉर्ड पर साबित किए गए बिलों से पता चलता है कि दोनों कुर्सियों की कीमत रु. 13,200/-थी।

(ix) कुर्सियों के बिल की राशि गैर-सार्वजनिक निधि (कैंटीन फंड) से अस्थायी रसीद पर ली गई थी और 20,000/- रुपये की राशि से इसे वापस कर दी गई थी।

(x) शेष राशि का उपयोग स्पीकर के लिए लकड़ी के बीडिंग और लकड़ी के बक्से के भुगतान के लिए किया गया था। इस पहलू पर विस्तार से विचार नहीं किया गया है क्योंकि यह आरोप का विषय नहीं है।

(xi) इस प्रकार, उपरोक्त तरीके से 20,000/- रुपये की राशि के उपयोग के बाद, याचिकाकर्ता द्वारा गबन के लिए 20,000/- रुपये की राशि उपलब्ध नहीं थी।

140. यह हमारे सामने एक स्वीकृत स्थिति है कि जहाज के खातों का लेखा परीक्षण किया गया था। जहाज को जारी किए गए धन का उपयोग करने के तरीके के संबंध में लेखा परीक्षकों द्वारा या उनसे कोई शिकायत या आपत्ति नहीं की गई थी।

141. मैसर्स गार्डन रीच शिप बिल्डर्स एंड इंजीनियर्स लिमिटेड एक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम था जो रिफिट को प्रभावित कर रहा था जिसने कोई शिकायत नहीं की थी।

142. कार्य निरीक्षण दल द्वारा दर्ज की गई कार्य समाप्ति रिपोर्ट, जिसमें नौसेना मुख्यालय का एक प्रतिनिधि शामिल था, कार्य और आपूर्ति के संबंध में कोई विसंगति या संदेह नहीं दर्शाती है।

143. उपरोक्त चर्चा से पता चलेगा कि अभियोजन पक्ष का मामला जहां तक आरोप सं.7 संबंधित मामला संदेह और अनुमानों पर निर्भर करता है क्योंकि समान राशि के लिए दो चेक, एक जहाज के खाते से और दूसरा याचिकाकर्ता के व्यक्तिगत खाते से, उसी तिथि को जारी किए गए थे।

144. सैन्य न्यायालय 28 आरोपों पर आयोजित किया गया था। एक आरोप संयोजक प्राधिकरण द्वारा हटा दिया गया था। सैन्य न्यायालय ने 8 आरोपों को बरकरार रखा जबकि अन्य को खारिज कर दिया। ये आरोप गंभीर प्रकृति के थे और इनमें गबन का अपराध भी शामिल था। सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने पाया कि प्रत्यर्थी समान साक्ष्य के आधार पर अन्य छह आरोपों को साबित करने में असमर्थ रहे तथा याचिकाकर्ता को केवल आरोप संख्या 7 के संबंध में दोषी ठहराया।

145. हम यह नोट कर सकते हैं कि सशस्त्र बल न्यायाधिकरण भी अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य से संतुष्ट नहीं था, जिसके आधार पर उसने अपने आदेश में निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं:-

“13. ... इस खाते को अपीलकर्ता द्वारा अपने निजी लाभ के लिए संचालित नहीं किया जाना चाहिए था। उस पृष्ठभूमि में,

यह माना जा सकता है कि अपीलकर्ता ने सीओ, आईएनएस मगर के खाते से 20,000/- रुपये निकालकर उसका दुरुपयोग किया है। जिस तरह से अपीलकर्ता ने कथित तौर पर काम किया है, उसमें धोखाधड़ी का आचरण शामिल हो सकता है या नहीं भी हो सकता है, लेकिन इसमें पैसे का दुरुपयोग करने का बेईमान इरादा शामिल है, यानी अपीलकर्ता ने उस पैसे का दुरुपयोग किया जो विभिन्न उद्देश्य के लिए आवंटित किया गया था।”

146. अधिकरण ने याचिकाकर्ता के खिलाफ अभि.सा.4-लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा की गवाही के आधार पर एक अनुमान तैयार किया है, जबकि अभि.सा. 12-श्री डी. के. दास, शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक की गवाही दोनों खातों के बैंक विवरण और चेक के दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा समर्थित है। अभि.सा.4 लेफ्टिनेंट ए. के. आहूजा की गवाही कमजोर और अविश्वसनीय है। यह अविश्वास के योग्य है बहुत ही तथ्य है कि यदि बताए गए तथ्य सच होते, तो लेफ्टिनेंट आहूजा ने पहले अवसर पर इसका खुलासा किया होता। वास्तव में उन्होंने याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई होगी।

147. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अभि.सा. 12 - श्री डी.के. दास, शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक ने 30,000/- रुपये के नकद भुगतान और चेक द्वारा 20,000/- रुपये के भुगतान के संबंध में गवाही दी थी। इस गवाह ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि 30,000/- रुपये की नकद राशि, जिसमें 20,000/- रुपये जहाज के खाता संख्या सी 3081 से निकाले गए थे और केवल 10,000/- रुपये नकद अभि.सा.-4 को सौंपे गए थे।

148. अधिकरण की टिप्पणियों से यह भी पता चलता है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोप स्थापित करने में विफल रहा है। अधिकरण द्वारा तैयार की गई धारणा किसी भी भौतिक साक्ष्य पर आधारित नहीं है। अधिकरण एक "अलग उद्देश्य" के लिए एक राशि का उपयोग करने का भी उल्लेख करता है जो स्वयं दर्शाता है कि राशि का दुरुपयोग नहीं किया गया है। श्री डी.जे. सिंह, अधिवक्ता ने कैंटीन फंड में राशि जमा करने या वापस करने को 'पुनर्व्यवस्था' के रूप में बताया है। हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा राशि के दुरुपयोग के किसी भी तत्व का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं है। इस स्थिति को सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने भी स्वीकार किया है।

149. प्रत्यर्थी ने हमारे समक्ष स्वीकार किया है कि मरम्मत के लिए उठाए गए बिल और याचिकाकर्ता द्वारा किए गए भुगतान पूरी तरह से राशि की प्राप्ति से मेल खाते हैं। इस पृष्ठभूमि में, जहां तक आरोप संख्या 7 का संबंध है, आगे कुछ भी जांचने की आवश्यकता नहीं है।

150. हम ध्यान दें सकते हैं कि प्रत्यर्थी महत्वपूर्ण गवाह की जांच करने में विफल रहे जो कार्य निरीक्षण दल के सदस्य हैं, जिसमें नौसेना का एक प्रतिनिधि शामिल था, जिसने बिलों के प्रसंस्करण और रिफिट के लिए भुगतान करने के कार्यों को प्रमाणित किया था, जो याचिकाकर्ता की बेगुनाही का समर्थन करता है।

151. उपरोक्त चर्चा से पता चलता है कि आरोप संख्या 7 ही एकमात्र आरोप था जिसके लिए याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया है। इस मामले में संयोजक प्राधिकारी के समक्ष आरोप संख्या 7 के लिए कोई साक्ष्य नहीं था। सैन्य न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के खिलाफ इस आरोप का समर्थन करने के लिए कोई सबूत नहीं था। इसके विपरीत सैन्य न्यायालय के समक्ष स्वतंत्र गवाह के साक्ष्य ने याचिकाकर्ता की बेगुनाही का समर्थन किया। यहां तक कि सशस्त्र बल अधिकरण ने भी याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि को अनुमान के आधार पर तय किया है, जबकि वह यह दर्ज नहीं कर पाया है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप सैन्य न्यायालय के समक्ष संदेह से परे साबित हो चुके हैं।

152. इसलिए सशस्त्र बल न्यायाधिकरण कानून के अनुसार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफल रहा, जहां तक आरोप संख्या 7 का संबंध है, याचिकाकर्ता के अपराध का पता लगाने में, जो त्रुटि वर्तमान कार्यवाही में उचित रिट के माध्यम से ठीक की जा सकती है।

153. *ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 2532, देविंदर सिंह बनाम नगर परिषद, सनौर* में हाल ही में दिए गए एक निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने *ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 232* में दिए गए पूर्व निर्णयों पर भरोसा किया। *स्वर्ण सिंह बनाम पंजाब राज्य* और *ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 477, सैयद याकूब बनाम के.एस. राधाकृष्णन* इस सिद्धांत को दोहराते हुए कि यदि अधिकरण के निष्कर्ष

का किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थन नहीं किया जाता है, तो रिट कोर्ट हस्तक्षेप करेगा, क्योंकि ऐसे मामलों में त्रुटि कानून की त्रुटि के बराबर होती है। यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि रिट न्यायालय हस्तक्षेप के आधार के रूप में साक्ष्य की अनुविता या अपर्याप्तता से संबंधित नहीं है।

154. हम संतुष्ट हैं कि तत्काल मामले में सशस्त्र बल अधिकरण का निष्कर्ष किसी भी सबूत पर आधारित नहीं है। आक्षेपित आदेश कानून की एक त्रुटि को प्रकट करता है जो इसलिए टिकाऊ नहीं है और उचित रिट जारी करके ठीक किया जा सकता है।

155. इस मामले से अलग होने से पहले, हम इस बात पर ध्यान दें सकते हैं कि हालांकि याचिकाकर्ता द्वारा याचिका की स्थिरता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है, याचिकाकर्ता ने कहा है कि उसने सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति के लिए सशस्त्र बल अधिकरण के समक्ष एक विविध आवेदन दायर किया था, जिसे 23 दिसंबर, 2010 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष वि.अनु.या.(सि.)सं.12430-341/2011 के रूप में एक विशेष अनुमति याचिका दायर की, जिसे 10 मई, 2011 के एक आदेश द्वारा 'सीमित रूप से' खारिज कर दिया गया था। **(1986) 4 एस.सी.सी. 146** पर रिपोर्ट की गई उच्चतम न्यायालय की घोषणा पर भरोसा करते हुए, **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य**, याचिकाकर्ता ने तत्काल रिट याचिका

दायर की है जिसमें तर्क दिया गया है कि अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के अतिरिक्त रिट अधिकार क्षेत्र को लागू करने का उनका अधिकार है। भारत का संविधान संरक्षित है। इस आधार पर कि याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, वर्तमान याचिका की स्थिरता पर कोई आपत्ति नहीं करने का आग्रह किया गया है। हम *इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन लिमिटेड* (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों द्वारा निर्देशित हैं।

156. इसलिए हम मानते हैं कि सशस्त्र बल अधिकरण, प्रधान पीठ, नई दिल्ली द्वारा 8 दिसंबर, 2010 को पारित आदेश; जनरल सैन्य न्यायालय के 1 नवंबर, 1990 और 15 मार्च, 1991 के आदेश; नौसेना प्रमुख का 27 अगस्त, 1991 का आदेश टिकाऊ नहीं है।

157. हमें बताया गया है कि यदि याचिकाकर्ता के सैन्य न्यायालय ने हस्तक्षेप नहीं किया होता तो अब तक वह सामान्य तरीके से सेवानिवृत्त हो गए होते। अब प्रश्न यह उठता है कि याचिकाकर्ता को किस प्रकार की राहत मिलनी चाहिए? 15 मार्च, 1991 से वेतन सहित सभी परिणामी लाभ प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई है, साथ ही उस तिथि से पेंशन की गणना की गई है, जिस दिन याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हो गया होता जबकि उसने प्रत्यर्थियों के साथ काम करना जारी रखा।

158. इस निर्णय के शुरुआती पैराग्राफ में हमारे द्वारा देखे गए याचिकाकर्ता का रिकॉर्ड विवादित नहीं है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ता कभी भी किसी अन्य मामले में शामिल या फंसाया गया था। सामान्य सैन्य न्यायालय के परिणामस्वरूप न केवल याचिकाकर्ता का आशाजनक कैरियर समाप्त हो गया था, बल्कि जनरल सैन्य न्यायालय द्वारा दी गई सजा के अनुसार जेल जाने पर वह अपनी स्वतंत्रता से वंचित हो गया। याचिकाकर्ता की सेवाएं समाप्त कर दी गईं तथा तब से उसे रोजगार के सभी लाभों से वंचित रखा गया है।

159. *(2010) 3 एस.सी.सी. 192, हरजिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य भंडारण निगम* द्वारा रिपोर्ट किए गए एक निर्णय में, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत एक औद्योगिक विवाद को लेकर एक कर्मचारी की सेवाओं को गलत तरीके से समाप्त करने का मुद्दा उठा। श्रम न्यायालय ने अपीलकर्ता को 87,582 रुपये के मुआवजे के साथ सेवा में बहाल करने का आदेश दिया था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आदेश को इस आधार पर प्रतिस्थापित कर दिया कि अपीलकर्ता को शुरु में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 और संबंधित विनियमों में निहित समानता धारा का पालन किए बिना नियुक्त किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विद्वत एकल न्यायाधीश ने बहस के दौरान पहली बार प्रत्यर्थियों के निगम की ओर से उठाई गई इस नई याचिका पर विचार करना और श्रम न्यायालय द्वारा पारित एक अन्यथा सुविचारित निर्णय को पलट देना और अपीलकर्ता को उसके

भरण-पोषण और उसके परिवार के एकमात्र स्रोत से वंचित करना उचित नहीं था। इस निर्णय के पैरा 21 में न्यायालय ने न्यायमूर्ति मैथ्यू के ग्रंथ “लोकतंत्र, समानता और स्वतंत्रता” से एक उद्धरण उद्धृत किया, जिसका प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

“27. ...जहां बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हैं और रोजगार पाना बेहद मुश्किल है, एक कर्मचारी जिसे सेवा से छुट्टी दे दी जाती है, उसे काफी लंबे समय तक निर्वहन साधनों के बिना रहना पड़ सकता है और एक निश्चित अवधि तक वेतन के रूप में हानि के लिए किसी रोजगार वाले व्यक्ति को बेरोजगार कर दिया जाना किसी तरह का मुआवजा नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में कहें तो, क्षतिपूर्ति, बहाली का खराब विकल्प होगी।”

इस मामले में भी याचिकाकर्ता परिवार का रोटी कमाने वाला सदस्य था और कलम के एक ही वार से उसके भरण-पोषण का पूरा साधन खत्म कर दिया गया।

160. इस पहलू पर, हम राजस्थान उच्च न्यायालय के खंड पीठ के निर्णय **1998 (1) डब्ल्यूएलसी 646 (19 नवंबर, 1997 को सिविल विशेष अपील संख्या 1007/1997, भारत संघ और अन्य बनाम पूर्व सिपाही चंदर सिंह में निर्णय)** का सावधानीपूर्वक उल्लेख कर सकते हैं, न्यायालय ने समरी सैन्य न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थियों पर लगाए गए दंड की वैधानिकता और उसकी वैधता पर भी विचार किया। इस मामले में भी, न्यायालय ने माना कि नियमों

का पालन न करने के कारण मुकदमा गलत साबित हुआ और यह भी कि सजा अनुपातहीन थी और उसे नहीं दिया जा सकता था। याचिकाकर्ता द्वारा दावा की गई बहाली और पिछले वेतन के लिए प्रार्थना करने पर न्या. बी.एस.चौहान (तत्कालीन माननीय न्यायाधीश) द्वारा लिखित न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:-

“32. पिछले वेतन की पात्रता के मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है और इसे विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग तरीके से निपटाया गया है।

(क) यदि सेवा समाप्ति आदेश रद्द कर दिया जाता है, तो कर्मचारी पुनः सेवा में बहाल होने तथा पूर्ण वेतन पाने का हकदार होगा, जब तक कि रिकॉर्ड में ऐसे कारण न हों जो सामान्य आदेश से विचलन को उचित ठहराते हों तथा उस स्थिति में, आपत्ति करने वाले पक्ष को यह स्थापित करना होगा कि किन परिस्थितियों के कारण विचलन आवश्यक था। [देखें पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम पी.एन.बी. कर्मचारी संघ:(1959) आईआईएलएलजे 666 एससी; हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट प्राइवेट लिमिटेड.हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी:(1978) आई. आई. एल. एल. जे. 474 एससी. मनोरमा वर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्य 1994 पुरक (3) एस.सी. सी. 671; संतोष यादव बनाम हरियाणा राज्य और अन्य : ए.आई. आर. 1996 एससी 3328; रमेश चंद्र और अन्य बनाम दिल्ली प्रशासन और अन्य:(1996) 10 एस. सी. सी. 409 और दया राम दयाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य:ए. आई. आर 1997 एस. सी. 3269)

(ख) यदि आक्षेपित बर्खास्तगी आदेश को केवल इस आधार पर रद्द कर दिया जाता है कि इसमें कठोर दंड का प्रावधान है, अर्थात् जहां सक्षम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि दंड की मात्रा कदाचार की गंभीरता के अनुरूप नहीं थी, तो दोषी कर्मचारी को इस कारण से पिछले वेतन का हकदार नहीं माना जाएगा कि "ऐसे विचलित आचरण के लिए सार्वजनिक धन को प्रीमियम के रूप में खर्च नहीं किया जा सकता"।[देखें सब डिविजनल इंस्पेक्टर (पोस्टल) व अन्य बनाम के.के. पविथरन : (1996) 11 एससीसी 695; राज. स्टेट रोड कॉरपोरेशन बनाम भाग्योमल व अन्य 1994 पुरक (1) एससीसी 573; मलकियत सिंह बनाम पंजाब राज्य : (1996) आईआईएलजे 432 एससी; डिप्टी कमिशनर ऑफ पुलिस व अन्य बनाम अखलाक अहमद 1995 एससीसी (एल/एस) 897]।

(ग) यदि बर्खास्तगी आदेश को तकनीकी आधार पर रद्द कर दिया जाता है, जहां प्राधिकरण दोषी कर्मचारी के खिलाफ आगे की कार्रवाई कर सकता है, तो बहाली का आदेश दिए जाने की स्थिति में वापस मजदूरी के भुगतान का सवाल निश्चित रूप से संबंधित प्राधिकरण द्वारा कानून के अनुसार, कार्यवाही की समाप्ति के बाद और अंतिम परिणाम के आधार पर तय किया जाना चाहिए। 80 निदेशक ईसीआईएल लिमिटेड का पृष्ठ 77 बनाम बी. करुणाकर: (1994) आई.एल.एल. जे.162 एस.सी.]

33. पिछले वेतन की पात्रता के मुद्दे पर विचार करते समय अन्य न्यायालय को एक निष्कर्ष दर्ज करना चाहिए कि कर्मचारी को प्रासंगिक अवधि के दौरान अन्यथा लाभकारी रूप से नियोजित नहीं किया गया था और क्या वह दोष से मुक्त था अन्य [यू. पी. राज्य और अन्य बनाम अटल बिहारी शास्त्री और अन्य 1993 पुरक (2) एससीसी 207]।”

161. सामने आये मामले में, याचिकाकर्ता की सेवा की समाप्ति के आदेश को गुण-दोष के आधार पर रद्द कर दिया गया है। याचिकाकर्ता का मामला उपरोक्त क्रम संख्या 'क' के तहत आता है। ऐसी कोई परिस्थिति नहीं बताई गई है जो याचिकाकर्ता को पूरा वेतन देने के लिए अयोग्य ठहरा सके। हमारे द्वारा वापस किए गए निष्कर्षों को देखते हुए, याचिकाकर्ता अपने कारावास के लिए मुआवजे का हकदार है जो अनुचित था। जहाँ तक उनके वेतन के बकाया का संबंध है, याचिकाकर्ता के बकाया से कटौती को सही ठहराने के लिए कोई कारण नहीं बताया गया है। प्रत्यर्थियों ने यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं रखा है कि याचिकाकर्ता सेवा से बर्खास्त होने के बाद लाभकारी रोजगार में था। **भारत संघ एवं अन्य बनाम पूर्व सिपाही चंदर सिंह** (पूर्वोक्त) के पैरा 32 में दिए गए सिद्धांत वर्तमान मामले पर लागू होंगे। हालांकि, याचिकाकर्ता ने भी इस संबंध में कोई खुलासा नहीं किया है।

162. याचिकाकर्ता को सजा सुनाए जाने और सेवा से बर्खास्त किए जाने के बाद से लगभग 23 साल बीत चुके हैं। इसलिए, वर्तमान मामला नियोक्ताओं को इस मुद्दे पर पुनर्विचार के लिए मामला भेजने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है। उसी चूक में आगे कारावास की सजा से बचाने के लिए याचिकाकर्ता को सैन्य न्यायालय द्वारा आरोपित जुर्माना को जमा करने के लिए बाध्य किया गया था। सभी पहलुओं से विचार करने के बाद, हमारा मानना है कि याचिकाकर्ता को बर्खास्त किए जाने की अवधि के लिए उसके वेतन के 50% के

बराबर राशि दी जानी चाहिए। याचिकाकर्ता को पेंशन की पूरी राशि उस तिथि से मिलनी चाहिए, जिस दिन से वह देय और भुगतान योग्य हो गई है।

पूर्ववर्ती चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम निम्नलिखित निर्देश देते हैं:-

- (i) सशस्त्र बल अधिकरण, प्रधान पीठ, नई दिल्ली द्वारा 8 दिसंबर, 2010 को पारित आदेश; सैन्य न्यायालय के 1 नवंबर, 1990 और 15 मार्च, 1991 के आदेश; नौसेना प्रमुख के 27 अगस्त, 1991 के आदेश को इसके द्वारा रद्द कर दिया जाता है।
- (ii) परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता 15 मार्च, 1991 से प्रभावी सभी परिणामी लाभों के साथ बहाली के काल्पनिक लाभों का हकदार होगा।
- (iii) जहाँ तक वेतन के बकाये का संबंध है, याचिकाकर्ता 15 मार्च, 1991 से उस तिथि तक जब तक कि याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त नहीं हो जाता तब तक के लिए 50 प्रतिशत का हकदार होगा। वह उस तिथि से पेंशन की पूरी राशि का हकदार होगा जिस तिथि को वह सेवानिवृत्त हुआ होगा जो उसे देय और स्वीकार्य होगी।
- (iv) प्रत्यर्थीगण आज से छह सप्ताह के भीतर उपरोक्त के अनुसार याचिकाकर्ता को देय राशि की गणना करेंगे और इसकी सूचना याचिकाकर्ता को देंगे।

(v) उपरोक्त निर्णय के अनुसार राशि का भुगतान याचिकाकर्ता को छह सप्ताह की अतिरिक्त अवधि के भीतर किया जाएगा।

(vi) याचिकाकर्ता 5 सितम्बर, 1991 को जमा की गई 10,000/- रुपए की राशि वापस पाने का हकदार होगा, जो उसके द्वारा 15 मार्च, 1991 और 27 अगस्त, 1991 के आदेशों के अनुपालन में जमा की गई थी।

(vii) याचिकाकर्ता वाद के लागत का हकदार होगा जिसकी राशि 25,000 रुपये निर्धारित की गई है जिसका भुगतान छह सप्ताह के भीतर किया जाएगा।

इस रिट याचिका को उपरोक्त शर्तों के साथ अनुमति दी जाती है।

(गीता मित्तल)
न्यायाधीश

(दीपा शर्मा)
न्यायाधीश

23 सितंबर, 2013

एमके

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।